राजपूत नारियां

लेखक :

विक्रमसिंह गुन्दोज

राजस्थानी शोध संस्थान

चौपासनी, जोधपुर

भूमिका-लेखक :

रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत

जयपुर

राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर

प्रकाशक :
राजस्थानी साहित्य संस्थान
यू. आर्ट टी. के पास
भगवती पौधशाला के सामने
जोधपुर

प्रथम संस्करण—जून 1990

मूल्य—पचास रुपये मात्र

मुद्रक :
प्रिंटिंग हाउस
जालोरी गेट के अन्दर
जोधपुर

Rajput Nariyan—Vikram Singh Gundoj

भूमिका

भारतीय नारी के समस्त आदर्श यदि एक ही जगह कोई खोजना चाहें तो वे, एक आदर्श क्षत्रिय नारी में देखे जा सकते हैं। क्षत्रिय जाति का इस देश के इतिहास और सस्कृति के निर्माण में जो अनूठा योगदान रहा है उसे कोई नकार नहीं सकता। धर्म और स्वतंत्रता के लिए हसते हंसते अपने प्राणों की बलि देना राजपूतों का प्रमुख कर्तव्य रहा है। अपनी आन-बान की रक्षा के लिए प्राणोत्सर्ग करना राजपूतों में बहुत ही गर्व की बात समझी जाती रही है। राजपूतों की अद्भुत शौर्य-गाथाओ, वीरत्व प्रदर्शन और गौरव गरिमा का मूल आधार राजपूत नारियां रही है। राजपूत रमणियो को ही क्षत्रिय धर्म (रजपूती) की समुचित पालना का श्रेय जाता है। क्षत्रियों का शौर्य, उनकी युद्धप्रियता, स्वामिभक्ति, धरती प्रेम, वचन पालन इत्यादि भारत तो क्या पूरे विश्व मे अतुलनीय है और इसे अतुलनीय स्वरूप प्रदान करने मे जीवन्त शक्ति के रूप में राजपूत नारिया ही सतत प्रेरणादायिनी रही है।

हमारे इतिहास में वीरों की शौर्य गाथाओं का वर्णन तो बहुत मिलता है किन्तु उन माताओं का जिन्होने अपनी आन-बान और शान की रक्षार्थ अपने वीर पुत्रो को दूध की लाज रखने रणांगण मे भेजा, उन अर्धांगिनियों को जिन्होने देश की रक्षा व धर्म पालन हेतु अपने चूडे की लाज बचाने रणबांकुरे पतियो को युद्ध भूमि मे भेजा और वे वीरांगनाए जो सतीत्व रक्षा के लिए जौहर की आग में जलकर भस्म हो गयी। उन शक्तिरूपा सबलाओ के त्याग और शौर्य की गाथाओं का समुचित विवेचन नही हुआ जिन्होने शत्रुदल का सफाया करने स्वयं हाथ मे खड्ग धारण कर रणचण्डी का रूप धारण किया। आवश्यकता पडने पर मोम की तरह नरम दिखने वाली राजपूत नारी सख्त चट्टान की भाति प्रबल से प्रबल झझावात के सम्मुख समर्थ खड़ी रही। परन्तु दुर्भाग्यवश पुरुष के वीरत्व गर्जन के आगे नारी की अन्त: प्रवाहिनी शक्ति धारा प्राय: आखो से ओझल ही रही।

राजपूत नारी की वीरता, साहस, त्याग, दृढ़ संकल्प, कष्ट सहिष्णुता, धर्म और पति-परायणता, शरणागत वत्सलता स्तुत्य

रही है। अपने शील व स्वाभिमान की रक्षा के लिए वीर माता, वीर पत्नी और वीर पुत्री के रूप में उसकी जो महत्वपूर्ण भूमिका रही है, उस पर प्रस्तुत पुस्तक में संक्षेप में प्रकाश डाला गया है।

पौराणिक, रामायणकालीन व महाभारतकालीन क्षत्रिय नारी के आदर्श तत्कालीन युग के अनुरूप निर्धारित हुए। मध्यकाल जब आया तो उस काल की मांग के अनुरूप राजपूत नारी की चारित्रिक विशेषताओं के भिन्न मापदण्ड स्थापित हुए। यों तो हर युग में राजपूत नारी में थोड़ा बहुत बदलाव आता रहा है पर मूलभूत शाश्वत संस्कारों में विशेष अन्तर नहीं आया और प्राचीन मान्य आदर्शों से राजपूत नारी सदा संस्कारित होती रही।

शक्ति और भक्ति की गंगा जमनी पावनधारा में राजपूत नारी ने जो अवगाहन किया वह स्तुत्य, प्रशंसनीय और अनुकरणीय है।

पुस्तक का नाम "राजपूत नारियां" न होकर "क्षत्रिय नारियां" होता तो ज्यादा ठीक रहता।

लक्ष्मी कुमारी चूण्डावत

निवेदन

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता:' स्मृतिकार मनु का यह कथन भारतीय संस्कृति में नारी के प्रति जो दृष्टिकोण और सम्मान भाव रहा है, उसका परिचायक है। हमारी प्राचीन सांस्कृतिक परम्परानुसार तो भार्याहीन पति देव, पितृ, यज्ञ और अतिथि पूजन का भी अधिकारी न था। अपने त्यौहारों और उत्सवों पर हम दृष्टि डालें तो ऐसा शायद ही कोई उत्सव और त्यौहार होगा जिसमें नारी की कोई भूमिका न हो। विश्व की महान् विभूतियों के निर्माण में नारी की महती भूमिका रही है। मातृ-शक्ति की तो देवों, ऋषियों व सन्तों तक ने वन्दना की है। पुरुष के नैराश्यपूर्ण अंधियारे जीवन में नव उत्साह के प्रकाश की किरण बनकर चमकने वाली नारी ने कई बार विकटतम परिस्थितियों में भी पुरुष के डगमगाते आत्मबल को सम्बल व प्रेरणा प्रदान की।

संस्कारित नारी सबल राष्ट्र की सबसे बड़ी पहिचान हुआ करती है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए मैंने इस पुस्तक में राजपूत नारियों का अति संक्षेप में चरित्रांकन करने की कोशिश की है, जिसकी प्रेरणा मुझे कल्याण के नारी अंक से मिली। पौराणिक काल की क्षत्रिय नारियों सहित 102 राजपूत नारियों का ऐतिहासिक विवेचन न कर उनकी चारित्रिक विशिष्टताओं को उद्घाटित करने का प्रयास किया है। इससे यदि नारी जाति में भारतीय नारी के आदर्शों के प्रति निष्ठा, नवचेतना व नवसंस्कार उत्पन्न होंगे तो मैं अपना प्रयास सार्थक समझूंगा।

राजस्थानी की यशस्वी लेखिका पद्मश्री रानी लक्ष्मीकुमारी चूण्डावत ने पुस्तक की भूमिका लिखकर मुझे अनुगृहीत किया है, इसके लिए मैं रानीजी का बड़ा आभारी हूं। पुस्तक के प्रकाशक, मुद्रक व पुस्तक लेखन के कार्य में जिन महानुभावों ने मुझे प्रोत्साहित किया, उन सब का आभार व्यक्त करता हूं।

विक्रमसिंह गुन्दोज

विषय सूची

देवहूति

ब्रह्मावर्त देश के अधिपति महाराज स्वायम्भुव मनु की लावण्य-मयी पुत्री देवहूति बड़ी गुणशीला थी। देवहूति की माता का नाम शतरूपा था। भारतवर्ष के सम्राट् महाराज मनु की पुत्री देवहूति का बचपन राजवैभव और ऐश्वर्य के वातावरण में बीता। फिर भी राजकुमारी देवहूति इसके प्रति आसक्त नहीं थी। देवहूति को त्याग, तपस्या और सादगीपूर्ण जीवन बहुत प्रिय था। धर्मज्ञ मनु की पुत्री का धर्म के प्रति अनुराग होना स्वाभाविक ही था। महाराजा मनु के सात्विक और धार्मिक विचारों का संभवतः देवहूति पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा और इसी के परिणाम स्वरूप सांसारिक सुखों के प्रति वह आकृष्ट नहीं हुयी। उसने आत्मकल्याण का मार्ग अपनाया।

एक सम्राट् की राजकुमारी के लिए किसी प्रकार का कोई अभाव न था। उसकी हर इच्छा की पूर्ति तत्काल हो जाती थी, केवल इच्छा जाहिर करने की देरी थी। वह चाहती तो अपने लिए योग्य और ऐश्वर्यशाली पति के साथ विवाह कर सुख से अपना जीवन बिता सकती थी। मनुष्य तो क्या कई गन्धर्व, नाग, यक्ष और देवता भी उस अप्रतिम रूपवान् राजकुमारी से विवाह करने को लालायित थे परन्तु देवहूति ने अपने लिये किसी देवता या पराक्रमी राजा की बजाय तपस्वी को पति चुना।

जीवन के शाश्वत सत्य की पहचान देवहूति को हो चुकी थी। देवहूति का मानना था कि—"यह मनुष्य जीवन भोग विलास के लिए नहीं मिला है। मानव-भोगों से स्वर्ग का भोग उत्कृष्ट माना गया है किन्तु वह भी चिरस्थायी नहीं है, अन्त में दुख देने वाला है। मोक्ष-साधक इस शरीर को विषयभोगों में लगाकर जर्जर बनाना भारी भूल है। सांसारिक ऐश्वर्य चिर सुखदायी नहीं हुआ करता। मनुष्य को चिर सुख प्राप्ति का प्रयास करना चाहिए और यह चिर-सुख भगवद् प्राप्ति से ही संभव है। यही देहधारियों की शाश्वत सिद्धि है जिससे ममता, मोह, आसक्ति और जन्म-मरण के बंधनों से जीव मुक्त हो जाता है। आत्म कल्याण ही जीवन का चिर उद्देश्य है।"

ऐसे उच्च विचार रखने वाली क्षत्रिय बाला देवहूति अन्य राजकुमारियों से भिन्न व्यक्तित्व रखती थी। वैराग्य ज्ञान की पिपासु और आत्मज्ञान की उस साधिका ने महर्षि कर्दम को पति रूप में स्वीकारा। देवहूति के गर्भ से नौ कन्याए उत्पन्न हुई जिनमें सती अनसूया (महर्षि अत्रि की पत्नी) और सती अरुन्धती (महर्षि वशिष्ठ की पत्नी) भी शामिल है।

देवहूति के गर्भ से भगवान् कपिल ने अवतार ग्रहण किया और अपने पिता कर्दम को उपदेश दिया। भगवान् कपिल द्वारा योग, ज्ञान, भक्ति और सांख्यमत माता देवहूति को बतलाया गया और इस मार्ग का अनुसरण करते हुए देवहूति ने परमानन्द नित्यमुक्त श्रीभगवान् को प्राप्त कर अपने जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त किया।

देवी देवहूति भारतवर्ष की महान् विभूति थी। उनके आत्मकल्याण और वैराग्ययुक्त वचनों व विचारों ने सदियों तक यहां के लोगों को प्रभावित किया। अनेक ऋषि-मुनियों ने इन तथ्यपरक बातों का आलोड़न-विलोड़न कर स्मृति, पुराण इत्यादि धर्म ग्रन्थों में आत्मकल्याण के लिए जो उपदेश दिये उससे यहां की जनता लाभान्वित होती रही और आज भी वे उपदेश उपयोगी और हितकारी माने जाते है। देवहूति की भारतीय आध्यात्म जगत् में तो महत्वपूर्ण देन है ही, भारतीय संस्कृति के शास्वत तत्वों के निर्माण में जो उसकी महती भूमिका रही है वह भी अविस्मरणीय है।

श्रिय एतः स्त्रियो नाम सत्कार्या भूतिमिच्छिता।
पालिता निगृहीता च श्रीः स्त्री भवति भारत ।।

ये स्त्रियाँ ही लक्ष्मी हैं। ऐश्वर्य को कामना वाले को इनका सत्कार करना चाहिए। वश में रखकर पालन-पोषण की गयी स्त्री लक्ष्मी ही हो जाती है।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, 46/15)

लोपामुद्रा

विदर्भराज की कन्या लोपामुद्रा का जन्म राजकुल में हुआ था। लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य की सहधर्मिणी बनी। बाल्यकाल से ही जो सुख भोगों में पली और राजकीय वैभव में जिसका अब तक का जीवन व्यतीत हुआ, अपने पति की आज्ञा पाते ही क्षण भर में बहुमूल्य वस्त्रों, आभूषणों और समस्त वैभव प्रदर्शन की वस्तुओं का परित्याग कर दिया। राज महिषी अब तपस्विनी बन चुकी थी। अपने पति के समान ही व्रत एवं नियमों का पालन करती हुई लोपामुद्रा तन-मन से पति की अनुगामिनी बन गयी। अपने आचरण और व्यवहार के कारण लोपामुद्रा की गणना अरुन्धती, सावित्री, अनसूया, सुनीति आदि प्रसिद्ध पतिव्रता नारियों में होती है।

लोपामुद्रा के आचरण के सम्बन्ध में देवताओं के गुरु महर्षि वृहस्पति ने अगस्त्य ऋषि के सम्मुख जो उद्गार प्रकट किये वे प्रत्येक भारतीय नारी के लिए ध्यान देने योग्य हैं और एक क्षत्रिय नारी की समस्त गरिमा को उजागर करने वाले हैं—

महर्षि वृहस्पति ने कहा—"हे मुनिवर ! आपकी सहधर्मिणी लोपामुद्रा बड़ी पतिव्रता है। यह कल्याणी शरीर की छाया की भांति सदैव आपका अनुसरण करती है। इसकी चर्चा पुण्य देने वाली है। आपके भोजन कर लेने के उपरान्त अन्न ग्रहण करती है, आपके सोने के पश्चात् सोती है और आपके जागने से पहले जग जाती है। आपकी अनुपस्थिति में आभूषणों को छूती तक नहीं। आपकी आयु बढ़े, इसके लिए यह कभी आपका नाम अपनी जबान पर नहीं लाती। सतीत्व रक्षा के लिए पर-पुरुष का स्मरण तक नहीं करती। आपकी कठोर बात को भी शान्ति से सहन कर लेती है, उसका बुरा नहीं मानती। सदैव आपकी मनोकामना को पूर्ण करने हेतु सेवा भाव मे तत्पर रहती है। आपको प्रसन्न करने की हमेशा कोशिश करती है। यह कभी घर के द्वार पर बहुत देर तक खड़ी नही होती। दरवाजे पर कभी नहीं बैठा करती और आपकी आज्ञा के बिना किसी को कोई वस्तु नहीं दिया करती।

"कुतर्क करने वाली, दुराचारिणी, कर्कशा, पति से द्वेष रखने वाली इत्यादि दुर्गुणों से युक्त असंस्कारित स्त्रियों से न कभी बात

करती है और न ही इनसे मैत्री स्थापित करती है। अकेली कहीं नहीं जाती। ओखली, मूसल, झाड़ू, सिल, देहली इत्यादि पर नहीं बैठा करती। किसी की निन्दा नहीं करती, कलह नहीं करती। आपके हर्ष, विषाद की सहभागिनी है तथा आपको ही परमेश्वर का रूप मानकर सदा सेवारत रहती है।"

स्त्री अपने पति की सच्चे मन से सेवा करे, पति की आज्ञा का उल्लंघन न करे यही उसका सबसे बड़ा व्रत है, परम धर्म है और इससे बढ़कर उसके लिए और कोई देवपूजा नहीं हो सकती। अपने पति की हर स्थिति में सहायक हो, उसका कभी परित्याग न करे चाहे वो कैसा भी हो क्योंकि पति ही उसके लिए देवता, पति ही धर्म, पति ही तीर्थ और सबसे बड़ा व पुण्यदायी व्रत है। जिस तरह छाया शरीर का, चांदनी चन्द्रमा का तथा बिजली मेघ का अनुसरण करती है उसी भांति स्त्री सदा अपने पति का अनुसरण करती रहे, पति के जीवन और मरण में उसकी सहचरी बनी रहे। इस तरह की कई बातें पतिव्रता नारी की विशेषता के रूप में हमारे धर्मशास्त्रों में दर्शायी गयी हैं। भारतीय नारी के जो सदियों से आदर्श रहे हैं उनकी साक्षात् प्रतिमूर्ति है—लोपामुद्रा। वास्तव में गृहस्थ वही है जिसके घर में पतिव्रता स्त्री है।

आज हमारे देश के प्राय: सभी समाज की नारियों में घर-घर में अपने रूप और लावण्य पर गर्व करने वाली स्त्रियों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती जा रही है। आधुनिकता के नाम पर वे जो कुछ स्वीकार कर रही हैं उसकी उपादेयता से वे संभवत: अनभिज्ञ हैं। भारतीय संस्कृति में नारी की महत्ता का विशेष स्थान रहा है। उन प्राचीन संस्कारों को व्यवहार में लाने की आवश्यकता है और उनकी उपयोगिता को समझा जाना चाहिए; केवल प्राचीनता के नाम पर उसका परित्याग करना समझदारी नहीं है। क्षत्रिय समाज में आज भी ऐसी नारियां संभवत: अन्य समाजों से अधिक संख्या में मिलेंगी जिनके आचरण में लोपामुद्रा के संस्कारों की छाप स्पष्ट झलकती है। ऐसी लोपामुद्रा अधिक संख्या में नहीं मिलती, भगवान् की असीम कृपा से मिला करती है। नारी का यहां समुचित सम्मान होता है। राजपूत समाज में तो आज भी, नारी को जो सम्मान दिया जाता है वह अनुकरणीय है। पति भी अपनी पत्नी को आदरसूचक जातीय विशेषण से पुकारते हैं।

सुनीति

राजा उत्तानपाद के दो रानियां थीं। बड़ी रानी सुनीति एवं छोटी सुरुचि। सुनीति पटरानी थी किन्तु राजा उत्तानपाद ने सुरुचि के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर विवाह किया था। सुरुचि जितनी सुन्दर थी उतनी ही चतुर और धूर्त भी। उसने अपनी रूपराशि के मोह-जाल से राजा उत्तानपाद को शीघ्र ही अपने वश में कर लिया। सुनीति राजमहिषी थी, यज्ञादि कार्यों एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में राजा के साथ उसकी प्रधान रानी सुनीति ही भाग लेती थी। यह बात छोटी रानी को बहुत अखरती थी। मन-ही-मन वह द्वेष करती थी। उल्टी सीधी मनगढ़न्त बातें बनाकर राजा उत्तानपाद को उसके विरुद्ध कर दिया। उत्तानपाद जिसे सुरुचि के सौन्दर्य ने जड़ और अंधा बना दिया था। विवेक रहित होकर राजा उत्तानपाद ने सुरुचि की हर बात को मानना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में एक दिन अपने मान का ढोंग रच सुरुचि ने अपनी सौत सुनीति को, जो अत्यन्त गुणवान् थी, राजमहलों से निर्वासित करा दिया। काम का आकर्षण गुण की अपेक्षा रूप की ओर अधिक होता है। राजा उत्तानपाद ने महारानी सुनीति का परित्याग कर दिया।

पति-परित्यक्ता सुनीति गोद में अपना नन्हा शिशु लिए राजधानी के समीप स्थित महर्षि अत्रि के आश्रम में निवास करने लगी। राजवैभव का परित्याग उस गुणवान् नारी ने राजमहलों में ही कर दिया था। अब वह एक तपस्विनी की भांति अपना जीवन व्यतीत करने लगी। पति से परित्यक्त सुनीति की आशा का केन्द्र अब उसकी गोद का बालक ध्रुव था। ऋषि कुमारों के साथ महर्षियों के सानिध्य में बालक ध्रुव का पालन हो रहा था। सरल, सात्विक, सद्गुणों की प्रतिमूर्ति बालक ध्रुव को देख-देख कर सुरुचि अपने जीवन के शेष दिन व्यतीत कर रही थी। वही उसका एकमात्र सहारा था।

उधर सुरुचि यह भली भांति जानती थी कि मैंने कपट पूर्वक सुनीति को पति से परित्यक्त तो करवा दिया परन्तु एक समस्या अभी और शेष है, वह है ध्रुव की। ध्रुव सुनीति का पुत्र था और

वह सुरुचि के पुत्र उत्तम से बड़ा था। नियमानुसार वही राज्य का उत्तराधिकारी था अतः सुरुचि अब इसी प्रयास में लगी हुयी थी कि जितना हो सके ध्रुव राजा से दूर रहे जिससे उनका स्नेह सिर्फ उत्तम पर ही रहे और वे उसे ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करें।

ध्रुव अभी पांच वर्ष का ही था कि एक दिन अपनी माता से आज्ञा लेकर पिता के दर्शन हेतु राजधानी में गया। ध्रुव के साथ आश्रमवासी अन्य ऋषिकुमार भी थे। राजधानी में पहुँच कर इन ऋषिकुमारों ने जब राजभवन में प्रवेश किया तो राजा उत्तानपाद ने उन्हें प्रणाम कर उनका अभिवादन किया। ध्रुव ने अपने पिता के चरणों पर जब मस्तक रखा तो राजा उत्तानपाद अपने इस सुन्दर व तेजस्वी बालक को गोद में लेने का मोह संवरण न कर सके।

बालक ध्रुव को राजा की गोदी में बैठा देख उसकी विमाता सुरुचि के कलेजे पर सांप लोटने लगे। उसने आते ही तुरन्त महाराजा को कहा—"महाराज ! आपने अभागिन के इस पुत्र को गोद में क्यों बैठाया है, यह आपको शोभा नहीं देता।" यह कहती हुयी सुरुचि राजा के समीप गयी और बालक ध्रुव का तिरस्कार करती हुई उसे अपने पिता की गोद से नीचे उतार दिया। इतना ही नहीं सुरुचि उसका अपमान करते हुए आगे यह कहने से भी नहीं चूकि कि "तुमने अभागी माता के गर्भ से जन्म लिया है। यदि तुम्हें महाराजा की गोद अथवा सिंहासन पर बैठना है तो मेरी कोख से जन्म लेना पड़ेगा।" राजा उत्तानपाद सहसा कुछ बोल न सके। ऋषिकुमार यह दृश्य देख स्तब्ध रह गये। विमाता के व्यंग्य बाणों से आहत ध्रुव के नेत्रों से क्रोधाग्नि प्रकट हो रही थी। उसका शरीर कांपने लगा। उसने एक बार अपने पिता की ओर देखा, वे चुपचाप बैठे थे। कठोर नेत्रों से उसने अपनी विमाता को देखा और तीव्रगति से वहां से प्रस्थान कर दिया।

राजधानी से बालक ध्रुव सीधा अपनी माता के पास आश्रम में पहुँचा। सुनीति ने अपने पुत्र की मनोव्यथा जानने हेतु पुचकारते हुए कहा—कहो तुम्हें किसने मारा है, किसने तुम्हारा अपमान किया है ? मां की गोदी में मुंह छिपाये बालक ध्रुव फूट-फूट कर रोने लगा और बड़ी कठिनता से रोते रोते ही उसने सारा वृत्तान्त अपनी

माता को सुनाया। सुनीति ने अपने लाल को छाती से लगा लिया और उसकी पीठ सहलाते हुए उसे सांत्वना प्रदान की।

बालक ध्रुव को विमाता की बात बहुत कचोट रही थी। वह अब भी सिबुक रहा था और पिता की गोद से जिस प्रकार उसे अपमानित कर उतारा गया, उससे बड़ा खिन्न था। उसने अपनी माता को फिर कहा—"क्या किसी पुत्र को अपने पिता की गोद में बैठने का अधिकार नही है? और फिर मुझे अभागिन का पुत्र कहकर विमाता ने मेरा ही नही, मां, तुम्हारा भी तो अपमान किया है, मैं इसे कभी सहन नही कर सकता।"

सुनीति के धैर्य का बांध टूट गया—"सचमुच, बेटा, मैं अभागिनी हूं। मैं अभागिनी नही होती तो अपने ही स्वामी द्वारा मेरा परित्याग नही होता। पति द्वारा परित्यक्त पत्नी संसार में अभागिनी ही मानी जाती है। ऐसी अभागी माता के कोख से जन्म लेना सचमुच तेरे अभाग्य का ही सूचक है।" कहते-कहते सुनीति के नेत्रों से आंसुओं की धार बह निकली। अश्रुपूर्ण नेत्रों से अपने प्राणों से प्रिय पुत्र ध्रुव को समझाते हुए सुनीति ने कहा—"बेटा, तुम्हारी विमाता ने जो कहा है वह सत्य है। उसी में तुम्हारा कल्याण है। भगवान् की तपस्या कर तुम संसार में सबसे श्रेष्ठ स्थान प्राप्त कर सकते हो। तुम्हारे पिता की गोद में तुम्हारे लिए चाहे कोई स्थान न हो किन्तु परम पिता परमेश्वर की गोद में बैठकर तुम निश्चिन्त हो सकते हो, वहां से तुम्हारी विमाता तुम्हे कभी नहीं उतार सकती।"

मां की यह बात सुनकर ध्रुव का सारा दुख दूर हो गया। उसने जगत् के पिता की गोद में बैठने की ठान ली। वह विमाता के पुत्र उत्तम से भी उच्च स्थान प्राप्त करने का इच्छुक हो उठा और उसने मां से यह जान लिया कि भगवान् को तपस्या द्वारा प्रसन्न कर मन-चाहा वरदान प्राप्त किया जा सकता है। उसने उसी समय वन जाने का निश्चय कर लिया।

गोद से उतरकर बालक ध्रुव ने अपनी मां के चरणों पर मस्तक रखा। पांच वर्ष का नन्हा बालक, सुनीति की आंखों का तारा, उसके जीवन का एकमात्र सहारा, भगवद् भक्ति हेतु वन में जाने के लिए मां से आशीर्वाद मांग रहा था। श्रेष्ठ कार्य हेतु सुनीति ने अपने पुत्र में अत्यधिक उत्कंठा और जिज्ञासा देख रोकना उचित न समझा। उसने अपने पुत्र को बांहों में भर गोदी में लिया, स्नेह से

पुत्र का मुंह चूमा। भरे नेत्रों और गद्गद् कंठ से वन को विदा होते ध्रुव को आशीर्वाद देते हुए सुनीति ने कहा—"जाओ पुत्र, उस जगत् पिता को प्रसन्न करो, प्रभु तुम्हारा मंगल करे।"

धन्य है वह ध्रुव-जननी सुनीति जिसने अपने जीवन भर की खुशियों को तिलांजलि दे पुत्र की मंगल कामना हेतु जो त्याग किया वह बेमिसाल है। सुनीति-पुत्र इसी ध्रुव ने आगे चलकर सर्वेश्वर भगवान् को प्रसन्न कर नित्यलोक की प्राप्ति का वरदान प्राप्त किया। पांच वर्ष का वह नन्हा-सा बालक ईशभक्ति की ओर प्रवृत्त होकर आगे चलकर ध्रुव पद प्राप्त करके ध्रुव लोक का अधिपति बना जिसकी समस्त ग्रह, नक्षत्र और सम्पूर्ण तारा वर्ग प्रदक्षिणा करता है। उसकी उपलब्धि में उसकी जननी की महती भूमिका रही। यह सुनीति का ही परिणाम था कि ध्रुव को ध्रुव बनवाया।

स्त्री पुरुष से उतनी ही श्रेष्ठ है, जितना प्रकाश अंधेरे से। मनुष्य के लिए क्षमा और त्याग और अहिंसा जीवन के उच्चतम आदर्श हैं। नारी इस आदर्श को प्राप्त कर चुकी है। पुरुष धर्म और अध्यात्म और ऋषियों का आश्रय लेकर उस लक्ष्य पर पहुंचने के लिए सदियों से जोर मार रहा है, पर सफल नहीं हो सका। मैं कहता हूं उसका सारा अध्यात्म और योग एक तरफ और नारियों का त्याग एक तरफ।

—प्रेमचन्द (गोदान, पृ. 163)

सावित्री

मद्रदेश के धर्मनिष्ठ राजा अश्वपति पर उनकी प्रजा बहुत प्रेम रखती थी। अश्वपति भी सत्यवादी और प्रजापालक राजा थे। उनके राज्य में हर प्रकार का अमन-चैन था। सभी प्रकार की सुख-सुविधा होने के बावजूद भी अश्वपति के कोई सन्तान नहीं थी। इस बात का उन्हे बड़ा दुख था। इस दुख की निवृत्ति और सन्तान प्राप्ति हेतु राजा अश्वपति ने अठारह वर्ष तक कठोर तपस्या की। इस कठोर तपस्या के परिणाम स्वरूप उनकी रानी के गर्भ से एक तेजस्वी कन्या का जन्म हुआ जिसका नाम सावित्री रखा गया।

सावित्री जब सयानी हुई तो उसके पिता राजा अश्वपति ने अपनी पुत्री से स्वयं ही अपने लिए योग्य वर खोजने को कहा। बडे संकोच भाव से उसने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य कर इस प्रयोजन हेतु कई वृद्ध मंत्रियों व राज्य कर्मचारियों के साथ यात्रा के लिए निकली। विभिन्न देशों, स्थानों व नगरों में घूम-घाम कर जब वह पुनः अपने पितृ-गृह लौटी तो पिता ने अपनी लाडली पुत्री की पसन्द जाननी चाही। सावित्री ने अपनी पसन्द से जो पति चुना उसके सम्बन्ध में जानकारी देते हुए पिता को प्रत्युत्तर दिया कि—"शाल्वदेश के रहने वाले सत्यवान नामक युवक को, जो सर्वगुण सम्पन्न है, उसे मैंने अपने मन से पति रूप में चुना है।"

उन्ही दिनों नारद ऋषि राजा अश्वपति की राज्य सभा में आये तब राजा ने अपनी कन्या द्वारा सत्यवान को वर चुने जाने की सूचना देते हुए इस सम्बन्ध में ऋषि श्रेष्ठ से विचार जानने च नारद ऋषि ने सत्यवान के सम्बन्ध में कहा कि—"द्युमत्सेन का वह वीर पुत्र बड़ा तेजस्वी, बुद्धिमान, क्षमाशील, दानी, उदार, सत्यवादी, रूपवान, विनयी, पराक्रमी, जितेन्द्रिय इत्यादि समस्त गुणों की खान है, किन्तु………।" कहते-कहते नारद रुक गये।

अश्वपति ने कहा—"कहिये, कहिये ऋषि श्रेष्ठ, आप रुक क्यों गये, अपनी पूरी बात बताकर हमें कृतार्थ करिये।"

नारद ने अपनी बात जारी रखते हुए कहा—"हे राजन्! सत्यवान में सर्वगुण होते हुए भी एक दोष है—उसकी आयु थोड़ी है। एक वर्ष बाद ही वह मृत्यु को प्राप्त हो जायेगा।"

यह सुनकर राजा बड़ा दुखी हुआ और सोचने लगा कि जिस पुत्री को इतनी कठोर आराधना के पश्चात् प्राप्त किया वही सुन्दर कन्या एक वर्ष की अल्प अवधि के बाद ही वैधव्य प्राप्त कर लेगी। राजा अश्वपति ने सावित्री को सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए समझाने का बहुत प्रयास किया पर सब विफल रहा।

सावित्री दृढ प्रतिज्ञ थी। अपने निश्चय पर अटल रहने की बात दोहराते हुए उसने कहा कि—"पिताजी, पहले मन में निश्चय करके फिर उसे वाणी से प्रकट किया जाता है और वाणी से प्रकट किये गये निश्चय को फिर क्रिया द्वारा पूर्ण किया जाता है। मैंने मन और वाणी से सत्यवान का पति रूप में एक बार चुन लिया है। अब वे दीर्घायु हों या अल्प आयु, गुणवान हों या गुणहीन, रूपवान हों या कुरूप जैसे भी है मेरे है और स्वयं मैंने उन्हें अपने पति रूप में स्वीकार कर लिया है और एक बार क्षत्रिय बाला जिसे पति रूप में वरण कर लेती है फिर किसी भी स्थिति में अन्य पुरुष को पति रूप में नहीं वर सकती। मेरा निश्चय अटल है।"

आखिर मे सावित्री के दृढ़ निश्चय की ही विजय हुई। राजा अश्वपति को सत्यवान के साथ उसकी शादी करनी पड़ी। सत्यवान शाल्वदेश का राजकुमार था किन्तु जिस समय अश्वपति ने अपनी कन्या का उससे सम्बन्ध किया उस समय उस पिता से राज्य छिन चुका था और वे अपने पुत्र व परिवार के साथ एक तपोवन में तपस्वी का-सा जीवन व्यतीत कर रहे थे। राजा अश्वपति की राजकुमारी को पुत्रवधू के रूप में स्वीकार करने में पहले तो संकोच किया किन्तु अश्वपति के पुनः अनुरोध करने पर उन्होंने इस सम्बन्ध को सहर्ष स्वीकार कर लिया। सावित्री मनवांछित पति प्राप्त कर प्रसन्न हुई।

ऐश्वर्य में पली सावित्री ने पतिगृह में एक साधारण गृहणी की भांति रहना प्रारम्भ किया। राजसी ठाट-बाट वाले सारे वस्त्राभूषणों का परित्याग कर वह गेरुए तथा वल्कल वस्त्रों को धारण कर विनम्र भाव से सास-ससुर व पति की सेवा मे जुट गयी। प्रिय वचनों व शान्तभाव से जिस कुशलता के साथ उसने सेवा का परिचय दिया उससे सब पूर्णतया सन्तुष्ट थे। सावित्री जैसी पत्नी व बहू पाकर वे अपने आप को भाग्यशाली अनुभव कर रहे थे।

समय बीतते देर नही लगती। एक वर्ष की अवधि के जब तीन

दिन शेष रहे तो सावित्री ने निराहार व्रत प्रारम्भ किया। सत्यवान के जीवन का आखिरी दिन जब शेष रहा तो उस दिन यज्ञ की समिधा हेतु जंगल से लकड़ी लाने सत्यवान रवाना हुआ तो सावित्री ने निवेदन किया—"स्वामी! आज आपको अकेले नहीं जाने दूंगी, मैं भी साथ चलूंगी।" "जंगल के कष्टपूर्ण रास्तों पर तुम चल नहीं पाओगी" सत्यवान ने उसे मना करते हुए कहा। परन्तु सावित्री की अत्यधिक उत्कंठा व आग्रह को अन्ततः उसे स्वीकार करना पड़ा और दोनों जंगल की ओर चले। अभी जंगल में पहुँचकर सत्यवान ने कुछ ही लकड़ियां काटी थीं कि उसे शारीरिक पीड़ा का अनुभव हुआ और यह बात उसने सावित्री से कही। सावित्री सत्यवान का सिर अपनी गोद में लेकर सहलाने लगी।

पति का सिर गोद में लिये पृथ्वी पर बैठी सावित्री ने एक भयंकर आकृति वाले पुरुष को जो हाथ मे पाश लिये सत्यवान के शरीर के पास आ खड़ा हुआ। उसे प्रणाम करते हुए सावित्री ने पूछा—"आप कौन हैं और क्या चाहते हैं?" विकराल पुरुष आकृति ने अपना परिचय देते हुए मंतव्य स्पष्ट किया—"मैं यमराज हूं और तेरे पति की आयु समाप्त हो गयी है, इसे लेने आया हूँ।" इतना कह यमराज ने सत्यवान के शरीर से प्राणों को निकालकर अपने पाश में बांध लिया और यमलोक की ओर रवाना हुए। सावित्री ने उनका अनुसरण किया। यमराज ने उसे समझाया—"जहां तक तुझे आना चाहिए था, आ चुकी, अब तू पति सेवा से मुक्त हुई, अब लौट जा।" सावित्री ने कहा—"पति का अनुसरण करना ही नारी का सनातन धर्म है, पति जहां जाय, जहां रहे, वहीं पत्नी को जाना और रहना चाहिए।"

सावित्री ने धर्मनिष्ठ, युक्तिसंगत विनम्र निवेदन करते हुए यमराज से वार्तालाप करने के दौरान अपने ससुर की नेत्र ज्योति, छिने हुए राज्य की प्राप्ति और कुलवृद्धि हेतु सौ पुत्रों की प्राप्ति का वर स्वयं ने भी प्राप्त कर लिया। यमराज ने कहा—तेरी सभी अभिलाषा पूर्ण होगी, अब तू यहां से लौट जा। सावित्री ने यमराज को उनके द्वारा प्रदत्त सौ औरस पुत्रों के वरदान का स्मरण दिलाते हुए निवेदन किया कि यह सत्यवान के बिना सम्भव नहीं अतः आप सत्यवान के जीवन का वरदान दीजिये। इससे आपके वचन और धर्म की रक्षा होगी। यमराज जो वचनबद्ध हो चुके थे, उन्होंने सत्य-

वान को यम पाश से मुक्त कर चार सौ वर्षों की नवीन आयु प्रदान की। इस प्रकार सावित्री ने यमलोक से अपने पति सत्यवान को पुनः प्राप्त करने में सफलता हासिल की।

नारी जिसे हमारे यहां के अधिकांश लोग मुक्ति मार्ग का बन्धन मान बैठे हैं और इस विचारधारा के अनुयायी प्रायः शास्त्रों, संतों व धर्म गुरुओं की उक्तियों द्वारा इस बात को पुष्ट करने का प्रयास करते आये है परन्तु वे यह भूल जाते है कि यहां की नारी ने (सावित्री ने) ही अपने पतियों (सत्यवान) को पातिव्रत्य के प्रभाव से मृत्युपाश तक से मुक्त करवाया है, फिर वह बंधनदायिनी कैसे ? नारी तो सदैव मुक्तिदायिनी रही है।

मत्तेभकुम्भदलने, भुवि सन्ति शूराः
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः।
किं तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः॥

शक्तिशाली पुरुषों के सामने मैं यह बलपूर्वक कहता हूँ कि संसार में कुछ ऐसे शूरवीर हैं जो मदमस्त हाथी के मस्तक को विदारने में निपुण हैं और कितने ऐसे भी हैं जो विकराल सिंह को भी मारने में कुशल हैं, परन्तु ऐसे पुरुष कम ही होंगे जो कामदेव के दर्प का दमन कर सकें।

—भर्तृहरि (शृंगारशतक, 58)

तारामती

शिवि नरेश की कन्या का नाम तारा था। शिवि देश और वहां के राजा की पुत्री होने के कारण लोग इसे 'शैव्या' नाम से भी पुकारते थे। शैव्या जब विवाह योग्य हुई तो उसका विवाह सत्यवादी महाराजा हरिश्चन्द्र से हुआ और वह 'शैव्या' से (तारा से) महारानी तारामती बनी। उसकी कोख से रोहित नाम का राजकुमार उत्पन्न हुआ। तारामती पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली अद्भुत क्षत्रिय नारी थी। उसने अपना अस्तित्व ही पति में विलीन कर दिया था। महाराजा हरिश्चन्द्र का सुख उसका सुख था और उनका दुख उसके लिए भी दुख था।

समय परिवर्तनशील है, सब दिन एक समान नही गुजरते। महाराजा हरिश्चन्द्र तारामती जैसी पतिव्रता पत्नी और रोहित जैसा मनोहारी राजकुमार पाकर अपने आपको सौभाग्यशाली समझते थे। उन्हें क्या पता था कि उनकी यह हंसी-खुशी की दुनियां चन्द दिनों तक ही रहेगी। एक दिन विश्वामित्र के मांगने पर अपना सारा राजपाट उन्हें दान कर दिया और आकर अपनी महारानी तारामती से मिले। महाराजा हरिश्चन्द्र को उदासीन और चिन्ताग्रस्त देख पतिपरायणा तारामती व्यथित हुई और महाराज से इस उदासीनता का कारण पूछा। तब महाराज हरिश्चन्द्र ने अपनी प्राण प्रिया को प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"मैंने अपने राजपाट का दान मुनि विश्वामित्र को कर दिया है। अब मैं राजा नहीं हूं, एक गरीब हूं। मुझे अपनी चिन्ता नहीं है पर इस स्थिति में तुम्हें और रोहित को जो कष्ट होगा वह मैं कैसे देख पाऊंगा, मन इसी चिन्ता से व्यग्र है।

तारामती ने कहा—"इस चिन्ता से व्यग्र होने की कोई बात नहीं, इस पर तो उलटा प्रसन्न होना चाहिए। राज्य और धन कितने दिन रहने वाला है, आज है और कल नहीं। यह शरीर जिसे हम कितने यत्नों से संभालते हैं फिर भी यह सदा नहीं रहता। ये सब क्षणभंगुर चीजें हैं, इनमें मोह रख कर दुखी होना व्यर्थ है। संसार में धर्म ही नित्य है अतः उसकी रक्षा करना ही जीवन की सफलता है। धर्म की रक्षा में प्राण भी चले जाय तो

सार्थक है। राज्य के प्रपंच में पड़कर आदमी ईश्वर को भूल जाता है और जिस उद्देश्य के लिए यह मानव शरीर प्राप्त हुआ है उसको ही विस्मृत कर अपना अहित कर बैठता है। "आप द्वारा राजपाट का दान देना तो मेरे लिए ज्यादा खुशी की बात है क्योंकि अब तक आप राज-काज में अधिक व्यस्त रहते थे किन्तु अब आप मेरे अधिक निकट रहेंगे। मुझे पति सेवा का ज्यादा अवसर मिलेगा। पतिव्रता के लिए पति का अखण्ड प्रेम और सत सौभाग्य तीन लोकों के राज्य से भी बढ़कर है।"

हरिश्चन्द्र अपनी पत्नी के ये उद्‌गार सुन कर अत्यन्त प्रसन्न हुये। उनके मन पर छायी उदासी मिट गई और चेहरे पर जो चिन्ता के भाव उभर आये थे समाप्त हो गये। वे मन-ही-मन तारामती के सद्‌गुणों और सद्‌विचारों की प्रशंसा करने लगे। दूसरे दिन सवेरा होते ही विश्वामित्र आये और बोले—"यह राज्य मुझे दे दिया है तो अब तुम जहां तक मेरा प्रभुत्व है वहां से निकल जाओ और हां! ये शरीर पर तुम्हारे जो बहुमूल्य वस्त्राभूषण पहने हुए हैं उन्हें भी यहीं छोड़ दो। वल्कल वस्त्र धारण कर अपनी पत्नी एवं पुत्र को साथ लेकर शीघ्र यहां से चले जाओ।"

राजा हरिश्चन्द्र बहुमूल्य वस्त्राभूषण उतार, वल्कल वस्त्र धारण कर अपनी पत्नी तारामती और पुत्र रोहित के साथ रवाना हुए तो विश्वामित्र ने हरिश्चन्द्र को रोककर कहा कि—"मुझे राजसूय की दक्षिणा दिये बिना कहां जाते हो।" हरिश्चन्द्र ने एक मास का समय मांगा। विश्वामित्र ने कहा—"तीसवें दिन यदि दक्षिणा नहीं दोगे तो मैं तुम्हें शाप दे दूंगा।"

राजा हरिश्चन्द्र आज एक गरीब और असहाय की भांति पैदल चले जा रहे थे। दो प्राणी—उनकी प्राणप्रिय पत्नी तारामती और पुत्र रोहित और उनके साथ थे। महारानी तारामती, जिसकी परिचर्या हेतु सैंकड़ों परिचारिकाएँ रहती थीं आज पैदल चल रही थी। सुकुमार बालक रोहित अपनी मां की गोद से नीचे नहीं उतरना चाहता था। रानी को पैदल चलने का अभ्यास न था, उसके चेहरे पर थकान के चिन्ह स्पष्ट परिलक्षित हो रहे थे फिर भी हिम्मत के साथ हर कदम आगे बढाये जा रही थी। पति का अनुकरण करने का मन में सन्तोष था। ये तीनों प्राणी विचरण करते-करते काशी नगरी में पहुंचे। विश्वामित्र काशी में ही थे। हरिश्चन्द्र जब वहां

पहुंचे तो उनसे भेंट हुई। विश्वामित्र ने याद दिलाया—"राजन्! आज तीसवां दिन है, मेरी दक्षिणा चुका दीजिए।" हरिश्चन्द्र ने कहा—"मुनिवर! अभी आधा दिन शेष है, मैं शीघ्र आपकी दक्षिणा चुका दूंगा, अब अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी होगी।"

राजा रानी बहुत अधिक थक चुके थे। पैदल चलने व उपवास के कारण कृशकाय हो चले थे। क्षत्रिय होने के नाते भीख तो लेते नहीं थे, पास पैसा भी नहीं था, कोई काम धन्धा भी प्रारम्भ नहीं किया था। बालक रोहित भूख से छटपटा रहा था। अपने पुत्र के लिए भोजन की व्यवस्था न करने वाला पिता विश्वामित्र की दक्षिणा कैसे चुकायेगा। राजा के धैर्य की बडी कठोर परीक्षा चल रही थी। राजा इस उधेड़बुन में था कि सन्ध्या से पूर्व कैसे दक्षिणा के धन का प्रबन्ध किया जाय। वह प्रतिक्षण चिन्तातुर होता जा रहा था।

अपने पति की यह दशा तारामती से अब और अधिक समय तक देखी नहीं जा सकती थी। राजा की चिन्ता का कारण उससे छिपा नहीं था। अश्रुपूरित नेत्रों और गद्‌गद कण्ठ से महारानी तारामती ने कहा—"हे स्वामी! आप चिन्ता छोड़िये और सत्य का पालन कीजिये। नरश्रेष्ठ! पुरुष के लिए सत्य की रक्षा से बढकर और कोई धर्म नहीं है। जिसका वचन निरर्थक हो जाता है उसका स्वाध्याय, दान आदि सम्पूर्ण कर्म निष्फल हो जाते है। हे आर्य! मुझसे पुत्र का जन्म हो चुका है। श्रेष्ठ पुरुष स्त्री का संग्रह पुत्र के लिए करते हैं, वह फल आपको प्राप्त हो चुका है. अतः आप दक्षिणा चुकाने के लिए मुझे किसी के हाथों बेच दीजिये।"

रानी की यह बात सुनकर हरिश्चन्द्र को बड़ा आघात लगा और वह मूर्छित हो गये। अपने पति की यह हालत देख तारामती भी मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। दोनों को इस प्रकार गिरा देख राजकुमार रोहित, जो भूख से पीड़ित था, कभी अपनी मां और कभी अपने पिता को भोजन देने के लिए पुकार-पुकार कर जगाने का प्रयास कर रहा था। राजा और रानी की मूर्च्छा दूर हुई तब सूर्यास्त होने में कुछ ही समय शेष था।

तारामती ने पुनः कहा—"हे स्वामी! समय अब बहुत कम

बचा है, मैंने जो प्रार्थना की है, वही कीजिए और दक्षिणा देकर अपने वचन का पालन कीजिए अन्यथा आपको शाप से पीड़ित होना पड़ेगा। आप मुझे अपने गुरु की दक्षिणा चुकाने के लिए बेच रहे हैं, कोई दुर्गुणों के वशीभूत होकर यह कार्य थोड़े ही कर रहे हैं। इसमें इतना सोचने और दुखी होने की क्या बात है।"

राजा किंकर्त्तव्यविमूढ हुआ बैठा था। तारामती बार-बार आग्रह कर रही थी। आखिरकार पत्नी द्वारा सुझाये हुए उपाय को ही उसे स्वीकार करना पड़ा। एक वृद्ध ब्राह्मण ने दासी का कार्य करने हेतु रानी को खरीदा। हरिश्चन्द्र के जीवन का यह क्रूरतम अनुभव था, अपने हाथों अपनी पत्नी को बेचना। पति से अलग होते समय तारामती फूट फूट कर रो रही थी, हरिश्चन्द्र की आंखों से आंसुओं का सैलाब थमने का नाम न ले रहा था। रोहित मां का आंचल थामे उससे लिपटा हुआ रो रहा था, ब्राह्मण के कहने पर भी वह मां को छोड़ नहीं रहा था। रानी तारामती ने ब्राह्मण से निवेदन किया—"आपने मुझ पर बड़ी कृपा की है, इतनी कृपा और कर दीजिए, इस बालक को भी खरीद लीजिए। मुझ अभागिन का यह पुत्र है, मै इसकी जननी हूँ, इसके बिना मैं मन लगाकर आपका कार्य नहीं कर पाऊंगी।"

ब्राह्मण ने तारामती के आग्रह पर रोहित को भी खरीद लिया। पत्नी और पुत्र को बेचने से जो धन प्राप्त हुआ वह सारा विश्वामित्र को सौंप दिया फिर भी दक्षिणा में कुछ धन कम पड़ गया तो राजा ने स्वयं को चाण्डाल के हाथ बेच मुनि को दक्षिणा प्रदान की।

एक दिन हरिश्चन्द्र श्मशान में पहरा दे रहे थे कि एक स्त्री की करुण पुकार उसे सुनायी दी जिसका पुत्र सांप के काटे जाने से मर गया था, उसे जलाने को लायी थी, उस भाग्यहीना के पास कफन तक नही था। वह स्त्री और कोई नहीं स्वयं हरिश्चन्द्र की पत्नी तारामती थी और यह बालक रोहित का शव था। तारामती के विलाप से हरिश्चन्द्र ने यह सब जान लिया। हरिश्चन्द्र ने अपनी भी स्थिति स्पष्ट की पर तुरंत संभलकर तारामती से कफन मांगा, उसके बिना अग्नि संस्कार संभव नहीं, क्योंकि इस समय मैं रोहित का पिता नहीं, चाण्डाल का सेवक हूं और उसके कार्य हेतु नियुक्त हूं।

तारामती ने कहा कि—"स्वामी, मेरी स्थिति से आप अनभिज्ञ नहीं हैं, मैं बिकी हुई दासी हूं, कफन के पैसे मेरे पास नहीं हैं, तन ढकने को एक ही साड़ी मेरे पास है, इसमें से आधी अपने कलेजे के टुकड़े रोहित के कफन हेतु देती हूं, आधी से अपने तन को ढक कर लाज की रक्षा करूंगी।"

हरिश्चन्द्र की परीक्षा की यह अन्तिम सीमा थी; ज्योंही तारामती कफन हेतु साड़ी फाड़ने को उद्यत हुई, समस्त देवता वहां प्रकट हुए, तारामती को रोका, रोहित को जीवन दान दिया और हरिश्चन्द्र के त्याग, धैर्य और सत्यपालन की सराहना की।

अनुकूला सदा तुष्टा, दक्षा साध्वी विचक्षणा।
एभिरेव गुणैर्युक्ता श्रीरिव स्त्री न संशयः॥

सदा पति के अनुकूल और सन्तुष्ट रहने वाली, दक्ष, साध्वी और बुद्धिमती स्त्री निःसन्देह लक्ष्मी के समान होती है।

—दक्षस्मृति

× × ×

पतिर्हि देवता नार्याः पतिर्बन्धुः पतिर्गुरुः।
प्राणैरपि प्रियं तस्माद् भर्तुः कार्यं विशेषतः॥

स्त्रियों के लिए तो पति ही देवता है, पति ही बन्धु और पति ही गुरु है। अतः उसे प्राणों की बाजी लगाकर भी विशेष रूप से पति का प्रिय करना चाहिए।

—वाल्मीकि रामायण (उत्तरकाण्ड, 48/17-18)

× × ×

अवध्यां स्त्रियमित्याहुर्धर्मज्ञा धर्मनिश्चये॥

धर्मज्ञ विद्वानों ने धर्म-निर्णय के प्रसंग में स्त्रियों को अवध्य बताया है।

—वेदव्यास (महाभारत, आदिपर्व, 157/31)

दमयन्ती

दमयन्ती विदर्भ देश के भीष्मक नामक राजा की पुत्री थी। राजा भीष्मक ने संतान प्राप्ति हेतु दमन ऋषि की सेवा की और उन्हीं के आशीर्वाद से भीष्मक के चार संतानें हुईं—दम, दान्त और दमन नामक तीन पुत्र और दमयन्ती नामक कन्या। दमयन्ती अत्यन्त रूपवती थी। उन्ही दिनों निषध देश पर नल नामक राजा राज्य करता था। वीरसेन का पुत्र नल गुणवान् और परम सुन्दर था। विदर्भ की राजकुमारी दमयन्ती राजा नल के गुणों की प्रशंसा सुन उसके प्रति आकृष्ट हो गयी और उधर राजा नल भी दमयन्ती के रूप-सौन्दर्य और गुणों पर मुग्ध हो मन-ही-मन उसे चाहने लगा था।

अपनी पुत्री को विवाह योग्य समझ राजा भीष्मक ने स्वयवर का आयोजन किया। दमयन्ती के स्वयंवर का निमन्त्र पाकर देश-देश के राजा-महाराजा विदर्भ पहुंचने लगे। भीष्मक ने उनके स्वागत-सत्कार की पूरी व्यवस्था कर रखी थी। राजा-महाराजा तो क्या इन्द्र और लोकपाल आदि देवता भी बिना निमंत्रण के ही उस अनिंद्य सुन्दरी के स्वयंवर में भाग लेने पहुंचे।

राजा नल की कीर्ति सुनकर दमयन्ती उसके प्रति पूर्णतः अनुरक्त हो गयी थी। यह बात इन्द्र, अग्नि, वरुण और यम जो इस स्वयंवर में भाग लेने आये थे, उन्हें पहले ही ज्ञात हो गयी। ये चारों देवता दमयन्ती से विवाह को उत्सुक थे। उन्होंने पहले तो स्वयं नल को भेष बदलकर अपना प्रतिनिधि (दूत) बनाकर दमयन्ती के पास भेजा किन्तु उससे कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं हुआ। दमयन्ती ने अपना निश्चय दोहराया कि मैंने तो अपने आप को राजा नल के चरणों में समर्पित कर दिया है। चारों देवता यह बात सुनकर क्रुद्ध हुए और सबने मिलकर एक उपाय खोजा। उन चारों देवताओं ने नल का रूप धारण कर लिया और स्वयंवर में जहां राजा नल बैठे हुए थे, उनके पास आकर बैठ गये।

स्वयंवर का सभा-मण्डप देश-देश के राजाओं से खचाखच भरा हुआ था। देवता, यक्ष, नाग, गन्धर्व, किन्नर, मनुष्य सभी समुदायों के प्रभावशाली व्यक्ति इसमें उपस्थित थे। दमयन्ती ने रंग-मण्डप में

प्रवेश किया। सभी प्रतियोगी सम्भलकर बैठे। दमयन्ती एक-एक नरेश को देखकर आगे बढ़ती गई। उसकी आंखें तो नल की छवि देखने को उत्सुक थी, केवल नल को ढूंढ़ रही थी। आगे जहां नल बैठे थे उस स्थान पर दमयन्ती पहुंची तो एक ही जगह पांच नल बैठे दिखाई दिये। सब का एक ही रंग, एक ही रूप, एक ही वेश-भूषा। दमयन्ती अपने प्रियतम को नही पहचान सकी, वह बड़ी उलझन में पड़ गयी। मन-ही-मन उसने परमेश्वर को याद किया और इस समस्या से उबारने की प्रार्थना की। उसके हृदय की सच्ची पुकार और राजा नल के प्रति अटूट अनुराग को देख ईश्वर ने उसे देवता और मनुष्य का भेद करने की बुद्धि प्रदान की। कुछ ही क्षण बीते थे कि वह असमंजस की स्थिति से निकल गयी। उसने नल वेशधारी पांचों लोगों को गौर से देखा तो उसे ज्ञात हुआ कि जो देवता नल का रूप धारण करके बैठे हैं, उनके शरीर पर पसीना नही है, उनकी पलकें नहीं झपकती, उनकी माला कुम्हलायी हुई नहीं है और उनकी छाया भी नहीं पड़ रही थी। राजा नल में ये सभी बातें भिन्न दृष्टिगोचर हुईं और इस रीति से, उसने अपने प्रियतम को पहचान लिया और राजा नल के गले में वरमाला डाल दी।

दमयन्ती को पाकर राजा नल अत्यन्त हर्षित हुआ। देव दुर्लभ वस्तु प्राप्त कर उसके हर्ष की सीमा नहीं रही। दमयन्ती, जिसने देवलोक का अद्भुत वैभव और ऐश्वर्य ठुकराकर राजा नल को स्वीकार किया। इतने बड़े त्याग को देखकर राजा नल दमयन्ती के हाथों बिना मोल बिक गया था। राजा नल उस परम रूपवती दमयन्ती का कृतज्ञ और आभारी था। दमयन्ती निषध-नरेश नल की महारानी बनी। प्रेम और सुख से उनका समय बीतने लगा।

सुख-दुख का चक्र निरन्तर चलता ही रहता है। समय सदा एक-सा नहीं रहता। राजा नल गुणवान्, धर्मात्मा और पराक्रमी थे पर जुए का एक दुर्व्यसन भी उनमें था और यह उनके दुख का कारण बन जाता है। जुए में नल अपना सर्वस्व हार गये। जब भाग्य प्रतिकूल होता है तो विपरीत परिणाम ही प्राप्त होते है। रानी दमयन्ती की सलाह का भी उस पर कोई प्रभाव नही पड़ा। परिणामस्वरूप राज्य त्याग कर, शरीर से वस्त्राभूषणों को उतार वे केवल एक वस्त्र पहने हुए दमयन्ती के साथ नगर से बाहर निकले।

राज्य से च्युत होने के बाद राजा नल अपनी पत्नी के साथ तीन दिन तक नगर के बाहर बैठे पर किसी ने उनकी मदद न की। जल पीकर तीन दिन बिताये। नगर के कुछ लोगों की सहानुभूति उनके प्रति थी परन्तु नये राजा के राज्यादेश एवं मृत्युदण्ड के भय से कोई मदद करने की हिम्मत नहीं जुटा सका। नल और दमयन्ती निराश होकर जगल की ओर चल दिये। ऐसी विकट परिस्थिति में भी दमयन्ती ने अपने पति का अनुसरण कर पतिव्रत धर्म का पालन किया। जंगल-जगल भटकने और अनेक कष्टों को भी वह प्रसन्नता से झेल रही थी।

राजा नल अकिंचन व असहाय था। उससे अपनी प्राणप्यारी दमयन्ती का दुख नहीं देखा जा रहा था। एक दिन जब दमयन्ती सोयी हुई थी, उसे अकेला छोड़ वे चल दिये। दमयन्ती की नींद टूटी और जब नल को अपने पास नहीं देखा तो भय और आशंका से वह कांप उठी। नल के वियोग मे दमयन्ती अत्यन्त दुखी अवस्था में इधर-उधर भटकने लगी।

दमयन्ती ने यह कभी नहीं सोचा था कि देवलोक के ऐश्वर्य को ठुकरा कर मैंने जिस व्यक्ति से प्रेम किया है वह राजा नल मुझे जंगल में अकेली और असहाय अवस्था में छोड़ जायेगा। क्या यह पुरुष प्रकृति है या कठोर नियति ? उसने अपने आपको संभाला और सोचा। सम्मुख आई विपत्ति का दृढ़ता से मुकाबला करना क्षत्रिय नारियों की अद्भुत परम्परा रही है। विकट परिस्थिति में भी उसका धैर्य नहीं डगमगाता। पतिव्रता का सतीत्व भंग नहीं होता। वह जब प्रतिकूल से प्रतिकूल स्थिति का मुकाबला करने को उद्यत हो उठती है तो उसे अनुकूलता में परिवर्तित कर देती है।

दमयन्ती ने नल से बिछुड़ कर अनेक कष्ट भोगे, संकट सहे पर हार नहीं मानी और अपने प्रिय की खोज में लगी रही। अन्ततोगत्वा उसे अपने निर्दिष्ट उद्देश्य में सफलता हासिल होती है और वह अपने पति राजा नल को खोज लेती है। संकट का समय व प्रतिकूल परिस्थिति का अन्त होता है और नल और दमयन्ती का पुनर्मिलन होता है। नल फिर अपना पैतृक राज्य प्राप्त कर लेते हैं। इस पूरे घटनाक्रम में दमयन्ती का विभिन्न परिस्थितियों में धैर्य, संघर्ष और साहस प्रकट होता है वह अनुकरणीय है।

शकुन्तला

एक बार राजा दुष्यन्त शिकार को निकले। मृग का पीछा करते हुए वे बहुत दूर निकल गये। मृगया के उद्देश्य से आश्रम में प्रविष्ट हुए राजा दुष्यन्त का एक आश्रमवासी ब्रह्मचारी ने अभिवादन करते हुए निवेदन किया—"राजन्! यह महात्मा कण्व का आश्रम है, मृगया यहां वर्जित है। इस तपोभूमि में सभी प्राणी अभय हैं, आइए आप ऋषि का आतिथ्य स्वीकार करें।" राजा दुष्यन्त ने ब्रह्मचारी का आमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

महर्षि कण्व आश्रम में नहीं थे, वे सोमतीर्थ गये हुए थे। आश्रम पर उनकी पालित पुत्री शकुन्तला ने अतिथि राजा दुष्यन्त का स्वागत किया और मधुर कन्द तथा फल आहार हेतु प्रस्तुत किये। मृगया की थकान से थका-हारा राजा दुष्यन्त शकुन्तला के मधुर अतिथि-सत्कार से सन्तुष्ट और प्रभावित हुआ, साथ ही शकुन्तला के सौन्दर्य पर मुग्ध भी। इसलिए आतिथ्यग्रहण के उपरान्त दुष्यन्त ने शकुन्तला का परिचय पूछते हुए कहा—"भद्रे! तुम कौन हो? तुम मुनि कन्या तो नहीं जान पड़ती।"

शकुन्तला ने अपना परिचय देते हुए कहा—"मैं राजर्षि विश्वामित्र की पुत्री हूं। मेरा जन्म होते ही मेरी माता मेनका ने परित्याग कर दिया था। जंगल में नदी के किनारे शकुन्त पक्षियों द्वारा छाया किये हुए मुझे महर्षि कण्व ने देखा और दयावश उठाकर आश्रम में ले आये। महर्षि ने मुझे सर्वप्रथम शकुन्त पक्षियों से घिरी हुई पाया था, उसी की स्मृति में मेरा नाम शकुन्तला रखा। महर्षि कण्व ने एक पिता की भांति पुत्रीवत् मुझे बड़े स्नेह और प्रेम से पाला है।"

शकुन्तला से परिचय प्राप्त कर और यह जानकर कि वह राजर्षि के कुल में उत्पन्न हुई है, उस ओर अधिक आकृष्ट हुए और अपना प्रणय निवेदन करते हुए अपनी महारानी बनने का प्रस्ताव शकुन्तला के सम्मुख रखा। शकुन्तला ने महात्मा कण्व के आने तक इन्तजार करने की बात कही पर राजा दुष्यन्त प्रतीक्षा करने के इच्छुक न थे। उन्होंने शकुन्तला को समझाया कि महात्मा कण्व तुम्हारे निर्णय से असन्तुष्ट नहीं होंगे और फिर राजकन्याएं तो स्वयं ही अपने पति

को चुना करती हैं, यह कोई अनुचित कार्य नहीं है। शकुन्तला ने, जो स्वयं राजा दुष्यन्त के प्रति आकृष्ट हो चुकी थी, अधिक प्रतिवाद नहीं किया और राजा दुष्यन्त का प्रणय निवेदन स्वीकार कर लिया। गन्धर्व विधि से दोनों ने विवाह कर लिया। राजा दुष्यन्त कुछ काल तक आश्रम में रहकर पुनः राजधानी को लौटा। जाते समय शकुन्तला को यादगार स्वरूप अपनी अंगूठी प्रदान की और वहां जाते ही शीघ्र उसे बुलाने का आश्वासन भी दिया।

एकान्त और खाली समय में अपने प्रिय का अनायास स्मरण होना स्वाभाविक ही है। शकुन्तला की भी अब यही स्थिति थी। यदा-कदा उसे अपने प्रीति पात्र दुष्यन्त की स्मृति हो आती तब वह अपने पति के ध्यान में पूरी तरह खो जाती। एक दिन वह दुष्यन्त के ध्यान में निमग्न हुई बैठी थी कि आश्रम में दुर्वासा ऋषि आये। शकुन्तला ने उनका यथेष्ट सत्कार नहीं किया फलतः ऋषि ने क्रोध करके उसे शाप दे दिया कि जिसके ध्यान में निमग्न होकर तू बैठी है और तूने उठकर मेरा स्वागत नहीं किया है, वह तुझे भी भूल जायेगा। आश्रमवासियों के निवेदन पर शाप के परिहार हेतु बताया कि किसी चिन्ह के दिखलाने से उसे पुनः तेरा स्मरण हो जायेगा।

महर्षि कण्व जब पुनः अपने आश्रम लौटे तो उन्हें शकुन्तला के गन्धर्व विवाह का सारा हाल ज्ञात हुआ। महर्षि ने विवाहिता शकुन्तला को अपने आश्रम में रखना उचित नहीं समझा और यह सोचकर कि राजा राज-काज में अधिक व्यस्त होने के कारण इसका ध्यान भूल गये हैं अतः अपने शिष्यों के साथ शकुन्तला को राजा दुष्यन्त के पास भेजा। राजा दुष्यन्त के सम्मुख राज सभा में कण्व मुनि के शिष्य उपस्थित हुए और शकुन्तला के आगमन की सूचना दी। दुर्वासा के शाप के कारण दुष्यन्त सब कुछ भूल गया। शकुन्तला को देखकर भी उसने पहचानने से इन्कार कर दिया। इतना ही नहीं, दुष्यन्त ने भरी सभा मे शकुन्तला का यह कहकर अपमान किया कि महारानी बनने के लोभ में तुम यह सब जो कर रही हो वह व्यर्थ है। मैंने तुम्हें कभी देखा भी नहीं, फिर व्यर्थ ही तुम मुझे कलंकित क्यों कर रही हो।

शकुन्तला ने बहुत याद दिलाने की कोशिश की और यह भी कहा कि आपने प्रेम के चिन्ह स्वरूप मुझे अपनी मुद्रिका भी दी थी।

अपनी प्रेम की यादगार की निशानी शकुन्तला ने दिखानी चाही पर देखा कि हाथ में वह अंगूठी नही है (वह तो मार्ग में शचीतीर्थ में आचमन करते समय गिर गयी थी)। मुद्रिका तो कहीं गिर गयी पर आपको अपने शब्द तो याद होंगे। शकुन्तला ने कई प्रसंगों का उल्लेख किया परन्तु दुष्यन्त पर उसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। दुष्यन्त ने कहा—मुद्रिका यदि तुम दिखाओ तो तुम्हारा विश्वास किया जा सकता है वरना अपनी स्वार्थ सिद्धि के लिए कुलटा स्त्रियें ऐसी बातें प्रायः गढ़ा ही करती हैं।

अपने पति द्वारा अपमानित और परित्यक्त शकुन्तला पुनः वन को लौट चली। उसने आत्मदाह करने की सोची किन्तु गर्भस्थ शिशु का ध्यान कर इस विचार का त्याग किया। अपनी पुत्री को दुखी देख मेनका उसे स्वर्ग में ले गयी।

शचीतीर्थ में शकुन्तला की जो अंगूठी आचमन करते समय अंगुली से निकल गयी थी उसे एक मछली ने निगल लिया था। यह मछली जब मछुआरे द्वारा पकड़ी गयी और उसने उसको काटा तो उसके पेट में यह अंगूठी प्राप्त हुई। अंगूठी लेकर वह जौहरी के पास गया। जौहरी ने अंगूठी पर राजा दुष्यन्त का नाम देखा तो अंगूठी सहित मछुआरे को कोतवाल के हवाले कर दिया। कोतवाल ने, अंगूठी जिस प्रकार प्राप्त हुई वह सारा वृत्तान्त सुनाया। ऋषि के शाप का प्रभाव अब समाप्त हो चुका था। यह अंगूठी देखते ही उसे शकुन्तला का स्मरण हो आया और उसका जो भरी सभा में अपमान किया था, उससे राजा के मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई।

देवासुर संग्राम के समय इन्द्र ने राजा दुष्यन्त की सहायता मांगी। स्वर्ग में जाकर दुष्यन्त ने असुरों को परास्त किया। वहां से पुनः अपनी राजधानी लौट रहा था उस समय हेमकूट पर्वत पर कश्यप ऋषि के दर्शनार्थ रुका। वहां सिंह-शावकों के साथ खेलते एक बालक को देखा। राजा को बड़ा विस्मय हुआ। उसने उसका नाम परिचय पूछा। सर्वदमन ने अपना तथा अपनी माता शकुन्तला का नाम बताया। दुष्यन्त और शकुन्तला पुनः मिले। राजा दुष्यन्त अपने पुत्र और पत्नी को लेकर अपनी राजधानी लौटा। यही सर्वदमन शकुन्तला पुत्र आगे चलकर पराक्रमी और यशस्वी नरेश भरत के नाम से विख्यात हुआ।

कौशल्या

कौशलराज की राजकुमारी कौशल्या अयोध्यापति अज के पुत्र युवराज दशरथ से ब्याही गयी थी। अज के पश्चात् दशरथ अयोध्या के राजा बने और कौशल्या राजमहिषी। राजा दशरथ के, कहते हैं, कई रानियां थीं, उनमें प्रमुख तीन का नाम—कौशल्या, कैकयी और सुमित्रा था। कौशल्या प्रथम परिणीता होने के नाते पट्टरानी थी।

राजा दशरथ सबसे छोटी महारानी कैकेयी के प्रति अत्यधिक आकृष्ट रहे। कौशल्या ने पतिव्रत धारण करते हुए कभी इस बात का बुरा नहीं माना। वह प्रारम्भ से ही धार्मिक विचारों की थी। राजा दशरथ के इस व्यवहार से वह और अधिक धार्मिक बन गयी और राजभवन में रहते हुए भी एक तपस्विनी का-सा जीवन व्यतीत करने लगी। दान-पुण्य, जप-तप, पूजा-पाठ और अनेक प्रकार के व्रत और अनुष्ठान में रत रहती थी। स्त्रियों के लिए सपत्नी द्वारा किये गये अपमान से बढ़कर कोई कष्ट नहीं हुआ करता। कैकेयी राजा दशरथ की प्रिय रानी थी अतः उसने पट्टरानी कौशल्या को बहुत कष्ट दिये, यहां तक कि कैकेयी के सेवक आदि भी कष्ट देने से नहीं चूके, फिर भी पृथ्वी-सी धैर्यवान् महारानी कौशल्या ने चुपचाप सब कुछ सहन किया। बड़ा भारी मनःकष्ट उठाया परन्तु अपनी शालीनता की मर्यादा का पालन करते हुए कभी किसी के सामने कैकयी की निन्दा नहीं की।

पुत्रप्राप्ति हेतु राजा दशरथ ने महर्षि वशिष्ठ के निर्देशानुसार श्रृंगी ऋषि के नेतृत्व में पुत्रेष्टि यज्ञ किया गया। उस यज्ञ में अग्निदेव ने प्रकट होकर राजा को जो सन्तानोत्पत्ति हेतु चरु दिया, उसका अर्द्ध भाग महारानी कौशल्या को प्राप्त हुआ और इसी की कोख से भगवान् राम ने अवतार लेकर माता कौशल्या को विश्ववन्द्य बना दिया।

माता कौशल्या ने राम के रूप में पुत्र प्राप्त कर अपने आपको परम धन्य समझा और उनके सारे क्लेश परमानन्द मे परिणत हो गये। मातृत्व स्त्री की सबसे बड़ी चाह होती है। मां अपनी सन्तान को प्राणों से भी अधिक चाहती है। कौशल्या को राम परमप्रिय थे

परन्तु साथ ही कैकयी पुत्र भरत पर भी उनका अनुपम स्नेह था। राम की भाति ही भरत पर उनका वात्सल्य था, यह कितनी अद्भुत बात थी। इतना ही नहीं राम अपने चारों भाइयों में सबसे बड़े थे। उन्हें जब युवराज पद देना तय हुआ उस समय कैकयी ने राजा दशरथ से पूर्व में दिये गये वचन के आधार पर राम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत को युवराज पद के राज्य तिलक का वरदान मांगा। राजा दशरथ वचनबद्ध थे, कैकयी की बात को स्वीकार करना पड़ा। उस समय राम वन गमन के लिए प्रस्थान करने से पूर्व कौशल्या से आज्ञा और आशीर्वाद लेने जाते हैं तब भी माता कौशल्या के भाव संकीर्ण नहीं हुए। कैकयी ने चाहे जो किया हो, परंतु भरत भी तो मेरा ही पुत्र है। भाइयों में परस्पर द्वेष न हो यही भाव रखते हुए अपने हृदय को बनाकर प्राणों से भी अधिक प्यारे पुत्र राम को वन जाने की आज्ञा प्रदान करती है। तुलसीदास ने इस प्रसंग का कितना मार्मिक दृश्य प्रस्तुत किया है—

जो केवल पितु आयसु ताता। तो जनि जाहु जानि बड़ि माता।।
जों पितु मातु कहेउ बन जाना। तो कानन सत अवध समाना।।

राम के वन गमन के पश्चात् वियोग से त्रस्त हो राजा दशरथ जब अपना शरीर त्याग देते हैं तब उनकी महारानी कौशल्या सती होना चाह रही थी परन्तु भरत ने उन्हें मना कर दिया। भरत, जो राम वन गमन के बाद कैकयी के महल की ओर जाना तो दूर रहा, भूलकर देखते तक नहीं थे। ऐसे पुत्र के अकृत्रिम स्नेह का परित्याग उससे करते नहीं बना। भरत के लिए अब वही एक मात्र आश्रय रह गयी थीं। अतः पति के साथ चितारोहण का विचार भरत के अनुरोध पर कौशल्या को छोड़ना पड़ा। कैसा विलक्षण उदाहरण है मातृत्व भाव का। इसकी क्षमता करने वाला कोई उदाहरण अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

चित्रकूट में सीता कौशल्या के सामने ही कैकयी को भला बुरा कहने लगी। उस समय कौशल्या ने जो ये निम्नलिखित उद्गार प्रकट किये वे कितने गरिमामय हैं—"जनक नन्दिनी! आप तो परम ज्ञानी महाराज विदेह की पुत्री हैं। आप जानती हैं कि कोई किसी को सुख दुःख नही देता। दैव की प्रेरणा से ही ये सारे कार्य होते हैं, प्राणी तो उसका निमित्त मात्र है। उसे दोष देना ठीक नही।"

सुमित्रा

सुमित्रा राजा दशरथ की महारानी थी। राजा दशरथ की रानियों की संख्या के सम्बन्ध में मतभेद है पर उनकी प्रमुख तीन रानियों में सुमित्रा की गिनती होती है। पहली रानी कौशल्या पट्टरानी थी। सबसे छोटी रानी कैकयी सर्वाधिक प्रिय महारानी थी और सुमित्रा सर्वाधिक कार्यकुशल महारानी थी। राजसदन के समस्त प्रबन्ध का निरीक्षण, दास दासियों की नियुक्ति, दान, पूजा-पाठ हेतु सामग्री प्रदान करना, आगन्तुकों व अतिथियों, दैनिक और नैमित्तिक उत्सवों, पर्वों, विशिष्ट अनुष्ठानों इत्यादि की व्यवस्था व आयोजन का भार सुमित्रा के कन्धों पर था। विविध भांति के अनेक कार्यों का सफल संयोजन करने में सुमित्रा दक्ष थी और यह उसी के वस का कार्य था। अपनी कार्यकुशलता व संयोजन शक्ति की विशिष्ट योग्यता के कारण सुमित्रा का नाम राजा दशरथ की तीन प्रधान महारानियों की सूची में तो आ गया किन्तु उसे जो सम्मान मिलना चाहिए था वह नहीं मिला। राजा दशरथ के प्रेम से वह उपेक्षित ही रही। उपेक्षिता महारानी सुमित्रा का अधिकांश समय पट्टरानी कौशल्या के साथ ही अधिक बीता करता था और पट्टरानी की भी अपनी-सी स्थिति देख सुमित्रा ने कौशल्या के समीप रहना ही उचित समझा। सुमित्रा अपनी बड़ी सौत यानि महारानी कौशल्या का बहुत अधिक सम्मान भी करती थी।

सुमित्रा चतुर व निपुण होने के साथ साथ बुद्धिमान भी थी और अपनी निपुणता के कारण ही उसने कौशल्या व कैकयी दोनों सौतों के साथ अपने मधुर सम्बन्ध बनाये रखे। सुमित्रा दोनों की ही विश्वास पात्र थी। उसका प्रमाण इस उदाहरण से मिल जायेगा कि जब पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त हुआ और अग्नि द्वारा प्राप्त चरु का आधा भाग तो पट्टरानी कौशल्या को दे दिया गया। शेष का आधा प्रिय रानी कैकयी को दिया गया और जो चौथाई हिस्सा बचा था वह शेष सभी रानियों में बांटना संभव नहीं समझ राजा दशरथ ने उस चौथाई हिस्से के दो भाग करके एक कौशल्या और दूसरा कैकयी को प्रदान कर दिया गया और यह उनकी इच्छा पर छोड़

दिया कि वे चाहे जिसे यह भाग प्रदान कर सकती है। कौशल्या ने अपना यह भाग सुमित्रा को दिया और कैकयी ने भी वह हिस्सा सुमित्रा को प्रदान किया।

कौशल्या राम की और कैकयी भरत की जननी थी। सुमित्रा की कोख से लक्ष्मण और शत्रुघ्न उत्पन्न हुए। इन सब में राम सबसे बड़े थे। उनसे छोटे भरत और भरत से छोटे लक्ष्मण और शत्रुघ्न। सुमित्रा विभिन्न कार्य सम्पादन में जितनी कुशल थी उतनी ही स्नेहमयी और ममतामयी भी थी। राम, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन चारों राजकुमारों का लालन-पालन व खेलकूद आदि का प्रबन्ध भी सुमित्रा ही किया करती थी। इतना ही नहीं, चारों राजकुमारों को सुमित्रा की गोदी में ही निद्रा आती थी। कौशल्या जब कभी पुत्र राम को अपने पास सुला लेती तो रात्रि में जागने पर राम उठ कर रोने लगते और सुमित्रा के पास जाने का इतना हठ करते थे कि रात्रि में ही कौशल्या को सुमित्रा के पास जाकर उसे सौंपना होता था। सुमित्रा की गोद में जाते ही राम चुप हो जाते थे। सचमुच सुमित्रा का स्नेह इतना अगाध और अनुपम था कि छोटे बालक राम और भरत अपनी मां से भी ज्यादा स्नेह और प्रेम विमाता (सुमित्रा) की गोदी में अनुभव करते थे।

पिता की आज्ञा पाकर राम वनवास के लिए रवाना होते हैं, उस समय लक्ष्मण भी उनके साथ रवाना हुए। राम ने बहुतेरा समझाया फिर भी लक्ष्मण ने अपना निश्चय नहीं छोड़ा, तब विवश हो राम ने माता सुमित्रा की आज्ञा लेने हेतु लक्ष्मण को उनके पास भेजा। सुमित्रा ने इस समय लक्ष्मण को जो आज्ञा और आशीर्वाद दिया उससे माता के विशाल हृदय का परिचय मिलता है—

तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता राम सब भांति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहं भानु प्रकासू॥
जौं पे सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुरु पितु मात बंधु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥

वन गमन के समय लक्ष्मण को यही उपदेश देती है कि तुम राम और सीता, जो तुम्हारे माता-पिता के समान हैं, उन्हें किसी प्रकार का कष्ट न देना। चित्रकूट में सीता के उद्विग्न चित्त को सुमित्रा ही अपनी नीतिज्ञ बातों के आधार पर शान्त करने में सफल होती है। सुमित्रा के गौरवमय हृदय का एक और उदाहरण दृष्टव्य है—

जब रणभूमि में लक्ष्मण आहत होकर मूच्छित हो जाता है और हनुमान द्वारा जब उसे यह खबर मिलती है तो उसके हृदय की विचित्र स्थिति हो जाती है। राम के लिए लक्ष्मण लड़ना हुआ गिरा, इसकी उसे प्रसन्नता है, पर अब राम वहां शत्रुओं के मध्य अकेला है, इससे उसे चिन्ता होती है, और अपने दूसरे लाल शत्रुघ्न को लंका भेजने को तत्पर होती है, पर वशिष्ठ ने उसे रोक लिया।

भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि।

निश्चय ही पति नारी के लिए आभूषणों की अपेक्षा भी अधिक शोभा का हेतु है।

—वाल्मीकि (रामायण, सुन्दरकाण्ड, *16/26*)

व्यसनेसु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयंवरे।
न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियाः॥

विपत्तिकाल में, पीड़ा के अवसरों पर, युद्धों में, स्वयंवर में, यज्ञ में अथवा विवाह के अवसर पर स्त्रियों का दिखाई देना दोष की बात नहीं है।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड, 114/28)

पृथक्स्त्रीणां प्रचारेण जातिं त्वं परिशंकसे।

नीच श्रेणी की स्त्रियों का आचरण देखकर तुम सम्पूर्ण स्त्री जाति पर ही संदेह करते हो।

—वाल्मीकि (रामायण, युद्धकाण्ड, 116/7)

कैकयी

कैकयी कैकय देश के राजा की राजकुमारी थी। कैकय देश अपने स्वर्गिक सौन्दर्य के लिए प्रसिद्ध रहा है। राजकुमारी कैकयी अत्यन्त रूपवती थी। अप्रतिम सौन्दर्य की धनी कैकयी शस्त्र-विद्या में भी पारंगत थी। राजा दशरथ ने अपना अन्तिम विवाह इसी राजकुमारी से किया। अपने सौन्दर्य और गुणों से राजा दशरथ को पूर्ण रूप से अपने स्नेह में बांध रखा था। सबसे छोटी रानी होने के बावजूद भी वह राजा दशरथ की प्रिय रानी थी और उसकी आज्ञा राजमहिषी से भी बढ़कर हुआ करती थी। कहने का तात्पर्य यह कि राजा दशरथ के रनिवास में कैकयी सबसे प्रभावशाली महारानी थी।

एक बार जब देवताओं के राजा इन्द्र शम्बर (शम्बरासुर) नामक असुर से अत्यन्त दुखी हो गये। इस कष्ट से उबरने के लिए राजा दशरथ से सहायता मांगी क्योंकि देवता असुरों को परास्त नहीं कर पा रहे थे। राजा दशरथ ने देवराज इन्द्र की सहायता करना स्वीकार कर लिया और अमरावती के लिए रवाना हुए तो कैकयी ने साथ चलने की इच्छा प्रकट की। महारानी कैकयी शस्त्र-संचालन व युद्ध-विद्या में प्रवीण थी और राक्षसों का युद्ध देखने की उसकी हार्दिक इच्छा थी। राजा दशरथ ने अपनी प्रिय रानी की प्रबल इच्छा को देखते हुए उसे भी अपने साथ ले लिया।

असुरों से घोर युद्ध करते हुए रणभूमि में राजा दशरथ घायल होकर मूर्च्छित हो गये। उनका साथी भी शत्रुओं द्वारा जब मार डाला गया तो महारानी कैकयी ने उस विकट परिस्थिति में भागते हुए रथ के घोड़ों की बाग संभाली और धनुष बाण हाथ में लेकर असुरों से संग्राम करते हुए पति की रक्षा करने लगी। कुछ समय पश्चात् राजा दशरथ की मूर्च्छा दूर हुई, वे सावधान हो पुनः युद्ध में जुट गये। कैकयी ने सहसा देखा कि असुरों के बाण से, राजा दशरथ जिस रथ पर सवार थे उसका धुरा कट गया है। धुरे के कटने के बाद रथ का पहिया डगमगा कर दशरथ को भूमि पर गिरा दे इससे पूर्व तत्काल महारानी ने रथ से कूद धुरी की जगह अपनी भुजा

लगा दी जिससे पहिया डगमगाये नहीं और राजा दशरथ को युद्ध में किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित न हो। अन्ततः राजा दशरथ ने अपने पराक्रम से असुरराज शम्बासुर को परास्त किया।

अपनी प्रिय रानी कैकयी द्वारा संग्राम में जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई गयी और दो बार सहायता कर राजा दशरथ के प्राणों पर आये संकट से जो रक्षा की उससे वे बड़े प्रसन्न हुये और इसके उपलक्ष्य में महारानी से दो वरदान मांगने को कहा। पतिपरायणा कैकयी, जो वीरांगना के रूप में अपना अद्भुत परिचय दे चुकी थी, राजा दशरथ को निवेदन किया—"यह तो मेरा सौभाग्य था कि मैं आपकी कुछ सेवा कर सकी। पति-सेवा से बढ़कर पत्नी के लिए और कोई कर्म नहीं होता, इस हेतु मैं अपने आपको वरदान योग्य कोई कार्य किया हो ऐसा नहीं मानती और फिर आपकी मुझ पर असीम कृपा है। मुझे किसी प्रकार का कोई अभाव नहीं है। आप मेरे आराध्य हैं, आपने मुझे अपनी सेवा का जो अवसर प्रदान किया, वह मेरे लिए वरदान से कम नहीं है।"

राजा दशरथ के बहुत आग्रह करने पर कैकयी ने यह कहकर बात टाल दी कि "जब आवश्यकता होगी मांग लूंगी।" राम के युवराज बनने के समय दासी मंथरा द्वारा भ्रमित और प्रेरित महारानी कैकयी को पूर्व के इन दोनों वरदानों की स्मृति दिलाई जाती है और कैकयी राम की जगह भरत को युवराज बनाने तथा राम को चौदह वर्ष का वनवास भोगने—ये दो वरदान मांगती है। कैकयी पर ये दो वरदान ही अभिशाप बन कर छा गये और उसके पीछे सारे गुण छिप गये। वह आजीवन पश्चाताप की आग में जलती रही, फिर भी उसकी छवि एक क्रूर हृदया विमाता के रूप में ही लोगों के सम्मुख रखी गयी। उसका वीरांगना व मातृत्व का रूप ओझल ही रहा।

सीता

मिथिला के राजा सीरध्वज जनक बड़े धर्मात्मा थे। शास्त्रों के ज्ञाता, ब्रह्मज्ञानी व परम वैराग्यवान होने के कारण वे 'विदेह' नाम से प्रसिद्ध थे। यज्ञ के लिए पृथ्वी जोतते समय राजा जनक को हल के धंसने से गहरी बनी हुयी रेखा, जिसे सीता कहा जाता है, से अत्यन्त रूपवती कन्या का प्रादुर्भाव हुवा। ईश्वर द्वारा प्रदत्त इस कन्या को राजा जनक ने पुत्रीवत् पाला। यही सीता जनक द्वारा औरस पुत्री की भांति पोषित होने के कारण जनक दुलारी के नाम से विख्यात हुयी।

सीता जब विवाह के योग्य हो गयी तो राजर्षि मिथिला नरेश जनक ने धनुष यज्ञ के साथ उसके स्वयंवर का आयोजन किया। राजा जनक के यहां एक शिव धनुष रखा हुआ था और इस धनुष को जो तोड़ेगा उसके साथ ही जनक ने अपनी पुत्री सीता का विवाह करने का प्रण कर रखा था। सीता-स्वयंवर में देश देश के वीर शिरोमणि राजा पहुंचे। मिथिलापुरी को दुल्हन की भांति सजाया गया। दशरथनन्दन राम और लक्ष्मण राजर्षि विश्वामित्र के साथ मिथिलापुरी पहुंचे। जब सारे राजा, जिनको अपनी वीरता पर अभिमान था, उस धनुष को तोड़ना तो दूर उसे उठाने में असमर्थ रहे तब राजा जनक को बड़ी चिन्ता हुयी। उन्हें इस बात का दुःख हुआ कि शायद सीता के भाग्य में विधाता ने विवाह लिखा ही नहीं है। उन्होंने जब यह कहा कि—"मुझे लगता है धरती वीरों से खाली हो गयी है, आप सब अपने-अपने घर पधारें।" लक्ष्मण इस बात से बहुत कुपित हुये, फिर विश्वामित्र की आज्ञा पाकर राम उठे और उन्होंने उस धनुष को तोड़ा। राम के साथ सीता का विवाह सम्पन्न हुआ।

राम के विवाह के साथ दशरथ के अन्य सभी पुत्रों का विवाह भी मार्गशीर्ष शुक्ल पक्ष की पंचमी को सम्पन्न हुआ। राजा जनक की दूसरी पुत्री उर्मिला लक्ष्मण को, राजा जनक के छोटे भाई कुशध्वज की दो पुत्रियां माण्डवी भरत को और श्रुतकीर्ति शत्रुघ्न

को ब्याही गयी। बड़े धूमधाम से यह विवाह सम्पन्न हुआ और राजा दशरथ पुत्रों और पुत्रवधुओं के साथ अयोध्या लौटे।

जनकपुर (मिथिलापुर) से लौटते समय भरत और शत्रुघ्न अपने मामा के साथ ननिहाल चले गये थे। राजा दशरथ ने राम का विवाह हो जाने के बाद उसे युवराज बनाने की सोची। युवराज के अभिषेक की तैयारी की गयी पर एन मौके पर कैकयी द्वारा सारी बात बिगाड़ दी गयी। राजा दशरथ से पूर्व में लिये दो वरदान इस अवसर पर मांगे, जिसमें राम की जगह भरत को युवराज पद तथा राम को चौदह वर्ष का वनवास। राम ने इस आज्ञा को सहर्ष शिरोधार्य किया।

जनकदुलारी सीता, जिसने अपने पिता के यहां अत्यधिक लाड़-प्यार में जीवन बिताया और राम से विवाह कर गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया ही था कि उस नयी नवेली दुल्हन के जीवन में महत्वपूर्ण मोड़ आया। अपने पति को वनवास की आज्ञा मिलने पर उसने भी वन साथ जाने का निश्चय कर लिया। राम ने सीता को बहुत समझाया, वन की कठोरताओं और अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं का भय दिखाया पर सीता अपने निश्चय पर अटल रही। वह सब कष्टों को सहन करने को तत्पर थी पर पति-वियोग उसे असह्य था। गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में उस पति परायणा की मार्मिक अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है। राम को प्रत्युत्तर देते हुए वह कहती है—

प्राननाथ करुनायतन, सुन्दर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ।।
मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद सुमदाई ।।
सास ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुन्दर सुशील सुखदाई ।।
जहं लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते ।।
तनु धनु धाम धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू ।।
भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस संसारू ।।
प्राननाथ तुम्ह बिन जग माहीं। मो कहुं सुखद कतहुं कछु नाही ।।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी। तैसिअ नाथ पुरुष बिन नारी ।।
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदनु निहारे ।।

कितना महान् त्याग है उस पतिपरायणा सीता का। जैसे प्राण के बिना देह और पानी के बिना नदी का कोई महत्व नहीं होता वही स्थिति पति रहित नारी की होती है। पति के बिना सारा

समाज भी अगर हो तो वह किस काम का, व्यर्थ है। वह पति के साथ ही सारे सुखों का अनुभव करती है—"नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे।" इसके साथ ही उसका यह मानना कि पति तो वन में जा रहे हैं और मैं यहां सुकुमारि बन बैठूं, यह क्या उचित है?

"मैं सुकुमारि नाथ बन जोगू, तुम्ही उचित तप मो कहुं भोगू।" में उसकी सम्पूर्ण वेदना प्रकट होती है और राम को आखिर में उसका आग्रह स्वीकार करना पड़ता है। पति के साथ उसने वन में जाकर अपरिमित कष्ट उठाये पर उसे पति के दुख में सहभागी बनने का सन्तोष था और उसने यह सब दुख सहर्ष स्वीकार किया। रावण द्वारा उसका हरण किया गया और अशोक वाटिका में ले जाकर कैद करके रखा। विभिन्न तरह के कष्ट व प्रलोभन दिये। रावण ने पट्टरानी बनाने तक का प्रलोभन दिया लेकिन पातिव्रत्य धर्म की पालना उसने जिस दृढ़ता के साथ की वह आज भी अनुकरणीय है। लव और कुश की जननी सीता की महानता जग-जाहिर है।

मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम की अर्द्धांगिनी जग-जननी सीता पर भी दुखों के कई पहाड़ टूटे। उस पति परायणा को कितनी ही कठोर अग्नि परीक्षाएँ देनी पड़ी पर इन सब को जिस साहस से झेला, उससे उनकी चारित्रिक विशेषता और भी ज्यादा उज्ज्वल बनकर, और भी निखर कर सामने आई।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः॥

जहां स्त्रियां पूजित होती हैं, वहां देवताओं का वास होता है। जहां इनकी पूजा नहीं होनी, वहां सब क्रियाएँ निष्फल होती हैं।

—मनुस्मृति (3/56)

उर्मिला

मिथिला नरेश सीरध्वज जनक की महारानी सुनयना की कोख से राजकुमारी उर्मिला का जन्म हुआ। जनक दुलारी सीता की यह छोटी बहिन थी। सीता का विवाह राम के साथ हुआ, उस अवसर पर उनके छोटे भ्राता लक्ष्मण के साथ उर्मिला ब्याही गयी। विवाह के उपरान्त अयोध्या में आगमन हुआ। कुछ ही दिन पश्चात् जब राम को युवराज घोषित किया गया तो महारानी कैकयी ने अपने पुत्र भरत को राम के बदले युवराज बनाने और राम को चौदह वर्ष का वनवास देने के दो वचन राजा दशरथ से मांगे। राजा दशरथ वचन बद्ध थे। राम ने सहर्ष वन जाना स्वीकार कर लिया। राम के साथ उनकी पत्नी सीता भी गयी। वनवास की आज्ञा केवल राम को हुयी थी किन्तु भ्रातृत्व प्रेम के कारण लक्ष्मण भी राम के साथ वनगमन को तैयार हुये। राम के बहुत समझाने पर भी उन पर कोई असर नहीं हुआ।

अपनी नव परिणीता का परित्याग कर लक्ष्मण वन को प्रस्थान कर गये। जनक दुलारी सीता भी अपने पति के साथ चली गयी। सीता की भांति वह भी यदि अपने प्राणाधार पति लक्ष्मण के साथ वन को गयी होती तो उसे पति सेवा का अवसर मिलता, उनका सान्निध्य मिलता तो उसे कुछ सन्तोष प्राप्त होता। उर्मिला के पति लक्ष्मण किसी के कहने से वन को नहीं गये, स्वेच्छा से पिता और माता तुल्य अपने बडे भाई और भाभी की सेवा के लिए वन में गये थे। यदि वह स्वयं उनके साथ जाती तो उनके कर्तव्य पालन में बाधा उत्पन्न होती। अपने पति के कार्य में किसी प्रकार का व्यवधान आये यह बात पतिव्रता नारी के लिए असह्य हुआ करती है। उसने अपने कलेजे पर पत्थर रख लिया और लक्ष्मण के विरह में घर रह कर ही चौदह वर्ष बिताये।

कितना अनुपम त्याग था उस क्षत्राणी उर्मिला का जिसने अपने सारे सुखों को तिलांजलि दे दी। सीता को अपने पति का संग प्राप्त था, यह सन्तोष था किन्तु उर्मिला की वेदना और पीड़ा का पार नहीं था। ऐसी विकट घड़ी में वह अकेली थी, कोई उसका

सम्बल और सहारा नही था। पति वियोग में चौदह वर्ष की लम्बी अवधि तक विरह की भयंकर आग में झुलसना उसने सहर्ष स्वीकार किया पर अपने पति के कर्तव्य पथ में बाधा बनना उचित नही समझा। प्रातः स्मरणीया अंगद और चन्द्रकेतु की जननी उर्मिला का यह बेमिसाल त्याग आज भी भारतीय नारी का एक अनुपम आदर्श बना हुआ है।

मही माँगती प्राण-प्राण में
सजी कुसुम की क्यारी ;
स्वप्न-स्वप्न में गूंज सत्य की
पुरुष-पुरुष में नारी।

—रामधारीसिंह 'दिनकर' ('वेणु वन', पृ. 9)

पुरुष स्त्री को शक्ति समझकर ही पूर्ण हो सकता है; पर स्त्री स्त्री की शक्ति समझकर अधूरी रह जाती है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 84)

नारी की सफलता पुरुष को बाँधने में है, सार्थकता उसे मुक्ति देने में।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (बाणभट्ट की आत्मकथा, पृ. 91)

स्त्रियों की शील-रक्षा का भार पुरुषों पर है।

—हजारीप्रसाद द्विवेदी (पुनर्नवा, पृ. 39)

माण्डवी और श्रुतकीर्ति

माण्डवी राजा जनक के भाई कुशध्वज की पुत्री थी। माण्डवी का विवाह राजा दशरथ के पुत्र भरत के साथ हुआ। माण्डवी का व्यवहार अत्यन्त स्नेहपूर्ण था तथा अपनी अन्य बहिनों सीता व उर्मिला (राजा जनक की पुत्रियां) तथा श्रुतकीर्ति जो क्रमशः राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्न को ब्याही थीं, एक ही परिवार की पुत्रवधुएँ बनीं, के साथ आदर और अटूट स्नेह बना रहा।

सौतेली सासुओं के प्रति भी सभी का समान रूप से सम्मान व आदर भाव था। सुशीलता, विनय, संयम, सेवा और सौहार्द के कारण राजा दशरथ के बड़े परिवार में पुत्रों और पुत्रवधुओं को लेकर किसी प्रकार की अनबन या विवाद नहीं हुआ। इसका कारण माण्डवी सहित सभी चारों बहिनों का सदगुणी व्यवहार, आपसी स्नेह और सदाचार व स्वार्थ रहित सेवा ही रहा। उनकी सुख शांति का सारा श्रेय उनकी आपसी समझ को जाता है।

माता कैकयी ने जब मंथरा की प्रेरणा से राम के लिए वनवास तथा राम की जगह भरत को युवराज पद देने का वरदान मांगा, उस समय माण्डवी लज्जा व शर्म से गड़ गयी। कैकयी के इस कृत्य से उसके हृदय पर गहरी चोट पहुंची। उसे इस बात का अत्यधिक दुख था। अपनी सास के उस अविवेकपूर्ण कार्य से सबसे अधिक कलंकित वह स्वयं अपने को समझ रही थी। लोक-लज्जा के भय से उसका हृदय विदीर्ण हुआ जा रहा था कि सभी लोग यही समझेंगे कि इसने ही (माण्डवी) अपने पति को युवराज बनाने के लिए अपनी सास को प्रेरित किया होगा। पर शालीनता की मूर्ति माण्डवी अपना दुख, मन की पीड़ा किसी के आगे प्रकट न कर सकी और मन-ही-मन घुटती रही। यही हाल उसकी छोटी बहिन श्रुतकीर्ति (शत्रुघ्न की पत्नी) का था। बाह्य आक्रमणों से अधिक भयंकर और कष्टकर होता है आन्तरिक वेदना को झेलना। इस अन्तरवेदना की आग को उर्मिला ने जिस भांति पिया उसका तो कोई सानी नहीं। फिर ये उर्मिला की छोटी बहनें भी कब पीछे रहने वाली थीं। माण्डवी के तक्ष और पुष्कल व श्रुतकीर्ति के सुबाहु और शत्रुघाती नामक पुत्र हुए।

शशिकला

शशिकला काशी नरेश सुबाहु की इकलौती पुत्री थी। शशिकला जब सयानी हुयी तो उसके लिए स्वयंवर रचने का राजा सुबाहु ने विचार किया। राजकुमारी शशिकला ने अपनी सहेली के माध्यम से अपनी माता को निवेदन किया कि—"मैंने राजकुमार सुदर्शन का हृदय से वरण कर लिया है और मेरा स्वयंवर व्यर्थ है।"

राजकुमार सुदर्शन अयोध्या के स्वर्गीय राजा ध्रुवसंधि की बड़ी रानी मनोरमा के पुत्र थे। भारद्वाज ऋषि के आश्रम में रहकर विविध विद्याओं का अध्ययन कर रहे थे। उनके सद्गुणों और शास्त्र ज्ञान की ख्याति सुनकर राजकुमारी शशिकला ने उसे ही पति रूप में वरण करने का निश्चय किया।

शशिकला की माता ने अपने पति राजा सुबाहु को पुत्री की इच्छा से जब अवगत कराया तो उन्हें हंसी आई। राजा सुबाहु ने रानी को कहा—"शशिकला अभी बच्ची है। लगता है उसे किसी ने बहका दिया है, उसे समझाओ।" राजा सुबाहु सुदर्शन से पूरी तरह परिचित थे। अपनी रानी को उसके सम्बन्ध में जानकारी देते हुए आगे कहा—राजकुमार सुदर्शन के पिता अयोध्या नरेश ध्रुवसंधि को आखेट के समय सिंह ने मार डाला। उसकी छोटी रानी लालावती के भाई युधाजित ने आक्रमण कर अयोध्या पर अधिकार कर लिया तथा अपने भानजे को वहां का शासक बनाकर स्वयं उसकी रक्षा के लिए अयोध्या में ही रहता है। अयोध्या नरेश ध्रुवसंधि की बड़ी महारानी मनोरमा अपने पुत्र के साथ वहां से भाग आये और भारद्वाज आश्रम में रहने लगे। सुदर्शन उसी मनोरमा का पुत्र है और आज अत्यन्त दरिद्रावस्था में जीवन व्यतीत कर रहा है। उसके साथ राजकुमारी शशिकला का विवाह कैसे किया जा सकता है। अतः अपनी पुत्री को समझाओ और कहो कि यह हठ अच्छा नहीं है। इस पागलपन को छोड़ो।

माता ने शशिकला को सारी स्थिति स्पष्ट करते हुए बहुत समझाया परन्तु दृढ संकल्पी शशिकला अपने निश्चय से टस-से-मस न हुई। उधर राजा सुबाहु ने स्वयंवर की सारी तैयारियां प्रारम्भ

करदी, सभी को निमन्त्रण भेज दिया। राजकुमारी शशिकला को जब यह ज्ञान हुआ कि पिता स्वयंवर की तैयारी में जुटे है और निमन्त्रण भेजे जा चुके हैं तो उसने एक ब्राह्मण के साथ पत्र भेजा जिसमें राजकुमार सुदर्शन को अपना निवेदन करते हुए लिखा कि—"मैंने हृदय से आपका वरण कर लिया है। पिताजी स्वयंवर करने जा रहे है। नरेशों को पत्र भेजे जा चुके हैं। मैं तो सच्चे मन से आपकी हो चुकी हूं। मैंने आपको अपना आराध्य स्वीकार कर लिया है, आप अब चाहे जैसा करें। मेरी मनोकामना पूर्ण करने और इस दुविधा से परित्राण करने हेतु आप अवश्य पधारें, यही प्रार्थना है।"

राजकुमार सुदर्शन ने शशिकला के प्रणय निवेदन को स्वीकार किया। माता व महर्षि भारद्वाज से आज्ञा प्राप्त कर स्वयंवर में भाग लेने काशी पहुंचे। सुदर्शन को स्वयंवर में देख सभी राजा विस्मित हुए। सबसे अधिक आश्चर्य उसके सौतेले भाई शत्रुजित् व उसके मामा युधाजित् को हुआ।

राजकुमारी के स्वयंवर की पूरी तैयारी हो चुकी थी। शशिकला को स्वयंवर में जाकर अपने लिए पति वरण करने को कहा तो उसने स्वयंवर में चलने के लिए मना कर दिया। उसने कहा कि—"स्वयंवर में तो वे राजकुमारियां जाती है जिन्हें कई राजाओं में से एक अपने लिए चुनना होता है। मैंने तो अपने पति का वरण कर लिया है, मुझे स्वयंवर में जाने की आवश्यकता नहीं। अकारण ही अनेक कामुक राजकुमारों के सम्मुख उपस्थित होने को मैं अच्छा नहीं मानती।"

पुत्री की इस अप्रत्याशित घोषणा से काशीराज सुबाहु एक बार तो बड़ी दुविधा में पड़ गये फिर राजसभा में सबके सम्मुख बड़ी नम्रता से वस्तुस्थिति प्रकट करते हुए सबसे क्षमा मांगी। सब अपने अपने घर लोटे। शत्रुजित् और युधाजित ने इसे अपना अपमान समझा और सुबाहु से युद्ध किया। इसमें वे दोनों मारे गये। शशिकला ने अपना मनचाहा पति प्राप्त किया और राजकुमार सुदर्शन अयोध्या के राजा बने। शशिकला राजमहिषी बनी।

देवकी

राजा उग्रसेन के भाई देवक की सबसे छोटी कन्या का नाम देवकी था। देवकी का विवाह वसुदेव से हुआ। उस समय इसका चचेरा भाई राजकुमार कंस जो अपनी चचेरी बहिन पर बहुत स्नेह रखता था, स्वयं रथ हांक रहा था। विदा की उस वेला में मार्ग में जब आकाशवाणी हुई कि—"हे अभिमानी कंस! तू जिसे पहुँचाने जा रहा है उसके गर्भ से उत्पन्न आठवें पुत्र के हाथों तेरी मौत होगी।"

कंस बड़ा क्रूर स्वभाव का था। उसने अपने पिता उग्रसेन, जो सात्विक प्रकृति के पुरुष थे, उन्हें कैद में बंदी बनाकर डाल दिया और स्वयं मथुरा का राजा बन बैठा। यह भविष्यवाणी सुन आवेश में तिलमिला उठा और देवकी के केश पकड़कर, तलवार खींचकर उसे मारने को उद्यत हुआ। वसुदेव ने समझाया—"यह आपकी छोटी बहिन है, पुत्री के समान है, इसका वध करके पाप के भागी क्यों बनते हो? तुम्हें इससे तो कोई भय नहीं है, इसके पुत्र से भय है और मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि इससे जो भी पुत्र होगा वह मैं आपको लाकर दे दूंगा।" वसुदेव के कहने से कस ने देवकी को छोड़ दिया। नारद द्वारा बहकाये जाने पर उसने अपने बहिन और बहनोई दोनों को कैद में डालकर बन्दी बना दिया और कड़ा पहरा बैठा दिया।

एक-एक कर देवकी के जो छः पुत्र कीर्तिमन्त, सुषेण, भद्रसेन, ऋजु, सम्मर्दन और भद्र उत्पन्न हुए वे उसके चचेरे भाई कंस द्वारा उसके सामने ही मार डाले गये। कंस द्वारा, जो इस प्रकार का जघन्य और भयंकर कष्ट दिया गया उसे देवकी जैसी बहिन का हृदय कैसे सहन कर सकता था। सातवां गर्भ स्रवित हो गया और आठवें पुत्र के रूप में भगवान् कृष्ण का जन्म होता है, जिसे कंस से छिपाकर वसुदेव गोकुल में नन्द के घर यशोदा की गोदी में रख आये और वहां से एक सद्यजात (उसी समय पैदा हुई) कन्या लेकर सकुशल लौट आये। कंस देवकी के पुत्री होने का समाचार मिलते ही वहां आया और उस कन्या को भी पत्थर पर दे मारा। वह कन्या उसके हाथ से छूटकर आकाश में यह कहती हुई चली गई कि—हे अधम! मुझे मारने का प्रयत्न व्यर्थ है। तेरा काल इस धरती पर उत्पन्न हो गया है। आठ सन्तानों की जननी देवकी का मातृहृदय वात्सल्य वेदना में तड़फता ही रहा।

रोहिणी

वसुदेव के कुल 18 पत्नियां थीं, उसमें रोहिणी भी एक थी। जब क्रूर कंस ने वसुदेव और देवकी को कारागार में बन्द कर दिया तो रोहिणी बड़ी व्याकुल हुई। कारागार में भी इस पतिपरायणा ने अपनी पति-सेवा जारी रखी। जब देवकी के एक-एक कर छः पुत्र कंस ने मार दिये और सातवां गर्भ रहा तो रोहिणी के भी गर्भ के लक्षण देख वसुदेव को चिन्ता हुई कि कहीं कंस देवकी की भांति शंकावश रोहिणी के पुत्र को भी न मार दे। इस भय से रोहिणी को उन्होंने अपने भाई व्रजराजनन्द के यहां गुप्त रूप से भेज दिया। नन्द के घर में रहते हुए ही श्रावणी पूर्णिमा को कृष्ण जन्म से आठ दिन पूर्व रोहिणी के गर्भ से बलराम का जन्म हुआ।

बलराम के जन्म की बात कंस के भय से बिल्कुल गुप्त रखी गयी। नन्द के घर में किसी प्रकार की कमी नहीं थी। सब बातों की सुविधा थी तथा नन्द और यशोदा ने उसे बड़े आदर भाव के साथ रखा। फिर भी पतिव्रता रोहिणी को पति से वियोग का दुख सालता रहा। पुत्र का मुख देख वह अपना दुख कुछ समय के लिए अवश्य भूल जाती परन्तु रह-रहकर भीतर जब भी पति की स्मृति जाग उठती वह व्याकुल हो जाती। कृष्ण का जन्म होने के बाद वह कृष्ण और बलराम दोनों की बाल क्रीड़ाओं में अपना दुख भूलने का प्रयत्न करती।

जिस प्रकार सीता ने राम के वियोग में एकाकी जीवन बिताया उसी प्रकार अपने पति से साढ़े ग्यारह वर्ष पति-वियोग में एकाकी जीवन बिताया। अपने दोनों बालकों बलराम और कृष्ण की परवरिश में लगी रही और यह सब कार्य कंस से छिपकर गुप्त रूप से बड़ी चतुरता के साथ किया। इसके पश्चात् कृष्ण द्वारा जब कंस का वध होता है, वसुदेव देवकी कारागार से बन्धन मुक्त होते हैं तब कहीं जाकर एक लम्बे अन्तराल के बाद वह अपने पति से मिलती है। उसके जीवन में सारे अंधियारे छंट कर फिर से नये प्रभात का प्रारम्भ होता है।

यशोदा

कृष्ण के माता-पिता देवकी और वसुदेव उनके जन्म के समय कारागृह में बन्दी थे। ब्रज के राजा नन्द के यहां बालक कृष्ण को चुपचाप भेज दिया जाता है। नन्द और यशोदा के कोई सन्तान न थी। ढलती उम्र में कृष्ण को पुत्रवत् पालने का जब सौभाग्य मिला तो वे आनन्द विभोर हो गये। यशोदा ने बड़े वात्सल्य और प्रेम के साथ कृष्ण का लालन-पालन किया और देवकीनन्दन यशोदा-नन्दन बन कर ब्रज में विविध बालक्रीड़ाओं से नन्द और यशोदा को ही नही, पूरे ब्रज मण्डल को स्वर्गिक आनन्द से युक्त कर दिया।

वात्सल्य की प्रतिमूर्ति यशोदा ने कृष्ण को पुत्र रूप में जिस प्रकार का प्यार प्रदान किया वह सभी माताओं के सम्मुख एक अनुपम आदर्श है। यशोदा मैया अपने पुत्र को देखकर फूली नहीं समाती है। प्रतिक्षण उसका आनन्द बढता जाता है। हर्षित होकर इधर-उधर डोलती है, कभी पुत्र को पालने में सुलाकर बाल कृष्ण की मधुर लीलाओं का रसपान कर मन-ही-मन मुदित होती है—

पलना स्याम झुलावति जननी।
अति अनुराग परस्पर गावति, प्रफुलित मगन होति नंद घरनी।
उमंगि उमंगि प्रभु भुजा पसारत, हरपि जसोमति अंकम भरनी।
सूरदास प्रभु मुदित जसोदा, पूरन भई पुरातन करनी।

अपने पुत्र के प्रति उमड़ते स्नेह को वह विविध कल्पनाओं में मोड़ आनन्द में निमग्न होती है। वह विधाता से वह दिन शीघ्र दिखाने की प्रार्थना करती है जिस दिन उसका लाल घुटनों के बल चलने लगेगा। कब दूध की दांतुलियां देखकर मेरे नेत्र सफल होंगे। अपने प्यारे लाल की तुतलाती बोली का आनन्द कब मेरे कानों में घुलेगा और कब यह मुझे मैया कहकर पुकारने लगेगा—

नान्हरिया गोपाल लाल, तू बेगि बडौ किन होहि।
इहिं मुख मधुर बचन हंसि कैधौं, जननि कहै कब मोहि॥

कृष्ण की लीला माधुरी को देख यशोदा का वात्सल्य सहस्र गुना उमड़ता। यशोदा के वात्सल्य से कृष्ण की मनोहारी लीला किरणें निखर उठती। दोनों में जैसे एक प्रकार की होड़-सी लगी हुई थी।

पुत्र की बालसुलभ क्रीडाओं में यशोदा सब कुछ भूल भाव विभोर हो जाती। सचमुच में यशोदा का जो यह अनूठा वात्सल्य था वह असीम, अनन्त और अपरिमित बन गया था। बालकृष्ण की लीला व यशोदा के वात्सल्य का जितना सूक्ष्म, सुन्दर और विलक्षण वर्णन सूरदास ने किया है वैसा शायद ही कोई कवि कर पायेगा।

कृष्ण की बाल-लीलाओं में एक युग एक पल की भांति बीत गया। यशोदा माता को यह ज्ञात ही नही हुआ कि ग्यारह वर्ष और छः माह बीत गये है और अब देवकीनन्दन कृष्ण, जिसे यशोदा ने अपने वात्सल्य रस मे निरन्तर सराबोर रखा, उन्हें त्यागकर मथुरा चले जायेंगे। मथुरा जाकर कंस का वध किया व अपने पिता व माता वसुदेव व देवकी को कैद से मुक्त किया और अपने माता-पिता को साथ ले वे द्वारका चले गये। पीछे सारे ब्रज की और विशेषकर यशोदा रानी की करुण दशा का कोई पार न था। वात्सल्यनिधि यशोदा का कृष्ण के प्रति कितना अगाध स्नेह था, ऐसा स्नेह औरस पुत्र के प्रति भी देखने को नही मिलता जबकि कृष्ण तो केवल उसके पोषित पुत्र थे। यशोदा की मनोदशा और कृष्ण के प्रति उसके अकृत्रिम स्नेह का एक उदाहरण उसके द्वारा वसुदेव पत्नी देवकी को भेजे गये सदेश में इस प्रकार वर्णित है—

संदेसौ देवकी सो कहियो।
हौ तो धाय तुम्हारे सुत की, मया करत नित रहियो।।
जदपि टेव तुम जानत उनकी, तऊ मोहि कहि आवै।
प्रातहि उठ तुम्हरे सुत कों, माखन रोटी भावै।।
तेल उबटनो अरु तातो जल, देखत ही भजि जावै।
जोइ जोइ मांगत, सोइ सोइ देती, क्रम क्रम करि करि न्हावै।।
सूर पथिक सुनि मोहि रैन दिन, बढ्यो रहत उर सोच।
मेरो अलक लड़ैतो मोहन, ह्वै है करत सकोच।।

जिसकी बाँहें बलमयी, ललाट अरुण है,
भामिनी वही तरुणी, नर वही तरुण है।
—रामधारीसिंह 'दिनकर' (परशुराम की प्रतीक्षा, पृ. 20)

रुक्मिणी

विदर्भ देश के राजा भीष्मक की कन्या रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के अलौकिक सौन्दर्य, दिव्य गुणों और अपरिमित पराक्रम की प्रशंसा सुनकर उसे ही अपना पति बनाने का निश्चय किया। रुक्मिणी का निश्चय उसकी सखी द्वारा माता को ज्ञात हुआ और रुक्मिणी की माता ने अपने पति राजा भीष्मक को एकान्त में कन्या की इच्छा से अवगत कराया। राजा भीष्मक पुत्री के लिए स्वयंवर करने को ही उद्यत था पर पुत्री की इच्छा ज्ञात होते ही द्वारका के राजा श्रीकृष्ण को अपनी सुशीला कन्या स्वीकार करने का प्रस्ताव भेजने की बात राज्य सभा में कही। राजा भीष्मक के मंत्रीगण व सभी सभासदों ने इस प्रस्ताव का समर्थन किया। उसके चारों छोटे पुत्रों—रुक्मरथ, रुक्मबाहु, रुक्मेश और रुक्ममाली ने पिता के साथ अपनी सहमति प्रकट की किन्तु उसका सबसे बड़ा पुत्र रुक्मी जो युवराज भी था, उसे पिता का यह प्रस्ताव अच्छा नहीं लगा। कृष्ण के साथ उसका द्वेष था। जरासंध, शिशुपाल और दुर्योधन जैसे शासकों से उसकी मित्रता होने के कारण कृष्ण के प्रति उसका द्वेष-भाव स्वाभाविक ही था। उसने आवेश में आकर पिता के प्रस्ताव का विरोध किया और कहा—"जिसके कुल का ठिकाना नहीं, जिसने मगधराज जरासंध के साथ युद्ध में पलायन किया, जो डाकू की भांति समुद्र में जा कर बसा है, ऐसे चंचलचित्त कृष्ण के साथ मैं अपनी बहिन का विवाह नहीं कर सकता। मेरी बहिन तो महापराक्रमी, अजेय, यशस्वी चेदिराज शिशुपाल की महारानी बनेगी।"

रुक्मी के इस निश्चय का विरोध करने की हिम्मत किसी में भी नहीं थी क्योंकि वह बड़ा दुराग्रही था। उसके पिता भीष्मक को भी विवश होकर अपने बड़े पुत्र की बात स्वीकार करनी पड़ी। रुक्मी ने चेदिराज शिशुपाल को अपनी बहिन रुक्मिणी से विवाह करने का निमन्त्रण तुरंत दूत द्वारा भेज दिया।

रुक्मिणी को जब यह ज्ञात हुआ कि उसका विवाह उसका भाई रुक्मी उसकी इच्छा के विपरीत चेदिराज से करने जा रहा है और

पिताजी भी उसका प्रतिवाद करने में असमर्थ हैं। ऐसी स्थिति में रुक्मिणी ने अपनी ओर से एक पत्र लिखकर द्वारकाधीश कृष्ण को पाणिग्रहण करने का सदेश भेजा। उसमें रुक्मिणी ने अपनी ओर से कृष्ण को पति रूप में वरण करने के उपरान्त भी भाई द्वारा अन्यत्र विवाह करने का पूरा समाचार भी लिखा था। रुक्मिणी का सदेश लेकर ब्राह्मण द्वारका पहुंचा। पत्र मिलते ही कृष्ण अकेले ही विदर्भ के लिए रवाना हो गये। बलराम ने सेना सहित विदर्भ को कूच किया। वे जानते थे कि कृष्ण अकेला गया है और वहां युद्ध होने की संभावना है।

कृष्ण के विदर्भ पहुँचने के समाचार सुनकर रुक्मी, शिशुपाल आदि क्रोधित हुए। जरासंध ने सभी राजाओं को यह कहकर उत्तेजित करने का प्रयास किया कि कृष्ण बिना निमंत्रण के यहां सेना सहित आया है, उसका हमें प्रतिवाद करना चाहिए। विवाह बाद में होगा, पहले यादवों को यहां से निकालना चाहिए। कृष्ण ने उसी समय प्रत्युत्तर देते हुए कहा कि--"राजकन्या के विवाह में किसी भी राजपुरुष को जाने का अधिकार है। सम्मानित नरेश अपरिचित स्थान पर बिना अपनी सेना के नही जाया करते, आप भी तो सभी ससैन्य यहां आये है। मेरे आने का कारण या प्रयोजन पूछने वाले मगधराज कौन होते हैं? यह अधिकार तो विदर्भराज भीष्मक को है, केवल वे ही पूछ सकते है।" राजा भीष्मक ने विवाह से पूर्व किसी प्रकार का कलह व विघ्न न हो इस हेतु सब को शान्त किया।

गौरी पूजन को जब रुक्मिणी मन्दिर पहुँची, उस समय कृष्ण ने रुक्मिणी की योजना व इच्छानुरूप उसका हरण कर लिया और द्वारका के लिए रवाना हो गये। शिशुपाल, जरासंध, दुर्योधन ने इसे अपना अपमान समझा और ससैन्य उसका पीछा किया। बलराम ने उनसे युद्ध कर उनको पीछे धकेल दिया। रुक्मी किसी तरह कृष्ण के रथ तक पहुँच जाता है। कृष्ण उसके केश पकड़कर सिर धड़ से अलग करने हेतु तलवार का वार करने ही वाले थे कि रुक्मिणी ने कृष्ण के पांवों में गिरकर अपने भाई के प्राणों की भिक्षा मांगी। रुक्मिणी के कहने से रुक्मी को प्राणदान तो दे दिया किन्तु कृष्ण अपनी तलवार से उसके सिर के बाल व दाढ़ी मूंछ काट कर हजामत बना दी और रथ के पीछे बांध दिया। बलराम रुक्मी, जरासंध, शिशुपाल और दुर्योधन की सम्मिलित सेना को परास्त कर जब

अपने छोटे भाई के पास पहुँचे तो उन्होंने कृष्ण को डांटते हुए कहा--"सम्बन्धियों के साथ ऐसा अपमानजनक व्यवहार नहीं किया करते।" उन्होंने रुक्मी को, जो रथ से बंधा था, बन्धन मुक्त किया।

रुक्मिणी को इतने विकट संघर्ष के बाद अपने आराध्यदेव कृष्ण प्राप्त हुए। कृष्ण को पति रूप में पाकर वह धन्य हुई। द्वारकाधीश की अनेक रानियां थी। भौमासुर के गिरिदुर्ग में कैद सोलह सहस्र राजकुमारियों को कृष्ण ने ही मुक्त करवाया था, फिर उन सबका विवाह कृष्ण के साथ ही होता है। इतनी रानियों में उनकी आठ पट्टरानियां थी जिनमें रुक्मिणी भी एक थी। प्रद्युम्न का जन्म उसी की कोख से हुआ था। अनिरुद्ध रुक्मिणी का पौत्र था।

पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः॥

स्त्रियां घर की लक्ष्मी कही गई हैं। ये अत्यन्त सौभाग्यशालिनी, आदर के योग्य, पवित्र तथा घर की शोभा हैं अतः उनकी विशेष रूप से रक्षा करनी चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, उद्योगपर्व, 38/11)

स्त्रीरत्नं दुष्कुलाच्चापि विषादप्यमृतं पिबेत्।
अदूष्या हि स्त्रियो रत्नमाप इत्येव धर्मतः॥

नीच कुल से भी उत्तम स्त्री को ग्रहण कर ले। विष के स्थान से भी अमृत मिले तो उसे पी ले, क्योंकि स्त्रिया, रत्न और जल ये धर्मतः दूषणीय नहीं होते।

—वेदव्यास (महाभारत, शांतिपर्व, 165/32)

रेवती

आनर्ताधिपति रैवत की पुत्र, रेवती अपने पिता की प्रिय पुत्री थी। रेवती जब विवाह योग्य हुई तो उसके पिता ने वर खोजने का प्रयास किया। पृथ्वी पर अनेक राजकुमार राजा रैवत ने देखे परन्तु उन सब में कोई-न-कोई दोष अवश्य मिला और इस प्रकार वह सर्व-गुणसम्पन्न कोई वर अपनी पुत्री के लिए नहीं खोज सका। राजा रैवत जब स्वयं इस सम्बन्ध में कोई निर्णय नहीं कर सका तो अपनी पुत्री को लेकर ब्रह्मा से पूछने ब्रह्म लोक को गये।

ब्रह्मलोक में जाकर ब्रह्मा के सम्मुख राजा रैवत ने अपनी समस्या रखी। प्रजापति ब्रह्मा ने यदुकुल में उत्पन्न बलराम को उनकी पुत्री के लिए योग्य वर बतलाया। राजा रैवत ब्रह्मलोक से वापस लौटे और ब्रह्मा द्वारा सुझाये गये वर बलराम को अपनी पुत्री स्वीकार करने का निमंत्रण द्वारका भेजा। बलराम के साथ अपनी पुत्री रेवती का विवाह कर राजा रैवत बद्रिकाश्रम की ओर तपस्या करने को चले गये।

बलराम की पत्नी रेवती लम्बे कद की थी और बलराम उसके सामने कुछ नाटे थे। रेवती पतिपरायणा थी और प्रमादहीन रहकर हमेशा सावधानीपूर्वक वह पति सेवा में तत्पर रहती थी। बलराम अपनी पत्नी का बहुत सम्मान करते थे। पति पत्नी एक-दूसरे को बहुत प्रेम करते थे। बलराम ने जब अपना शरीर छोड़ा तो रेवती ने अपने पति के बिना जीना व्यर्थ समझा और स्वयं काठ की चिता बना कर अपने प्राण प्यारे पति की देह के साथ सती हुई। इस प्रकार रेवती ने पति के साथ सहगमन किया और वह शाश्वत सह-चरी बनकर पति के साथ स्वर्ग में पहुँची।

पुरुष यश का स्वप्न देखता है, जबकि नारी प्रेम करने के लिए जागती रहती है।

—टेनिस (इडिल्स ऑफ दि किंग)

विदुला

सौवीर देश की राजमाता को जब यह ज्ञात हुआ कि उसका पुत्र संजय युद्ध की विभीषिका से आतंकित और सिन्धुराज से पराजित होकर घर लौटा है तो उस वीर क्षत्राणी को अपने पुत्र का युद्ध से पलायन बहुत बुरा लगा। वीर माता के लिए यह असह्य था, वह अपने पुत्र को धिक्कारने लगी।

धिक्कार है तुझे! कायरों की भांति युद्ध भूमि से पलायन कर अब तू घर लौटा है, तुझे डूब मरने के लिए कहीं चुल्लू भर पानी नहीं मिला। कुल कलंक! तू अपने वीर पिता का पुत्र कहलाने का अधिकारी नहीं है। पुरुषत्वहीन! तेरी कीर्ति नष्ट हो गयी है, अब तेरा जीवन व्यर्थ है। तू किस मुंह से मेरे सामने आया है, शीघ्र मेरी आँखों के सामने से हट जा। कापुरुष! तू कैसा पुरुष है, जिसे प्राणों का भय हो, शत्रु के भय से रणभूमि से भाग खड़ा हो वह क्या पुरुष कहलाने का अधिकारी है। पुरुष तो वह है जो पराक्रमी हो, शत्रु का मुकाबला करने की हिम्मत और बुलन्द हौसला रखता हो, शत्रु के आघात पर प्रतिघात करने और अरि-मद-मर्दन करने की जो क्षमता रखता हो वही पुरुष है। स्त्री भी पृथ्वी पर हीन और अपमानित होकर नही रहना चाहती। तेरे जैसे पुत्र इस पवित्र कुल पर कलंक लगाने को उत्पन्न हुए है और तेरे जैसे कायर और कुल कलंक पुत्र को जन्म देकर मैं आज लज्जित हुई हूं। ऐसे पुत्र से तो मैं निःसन्तान भली थी। संजय! शत्रु से पराजित होकर दुनियां में निन्दनीय और घृणित जीवन बिताने से तो श्रेष्ठ है तू देश की रक्षार्थ जब तक शरीर मे शक्ति है शत्रु से युद्ध कर और युद्ध भूमि में प्राणोत्सर्ग करके सुयश का भागी हो।"

संजय विदुला का इकलौता पुत्र था परन्तु वह भीरु स्वभाव का था। संजय अपनी माता को कहता है—"मेरी मृत्यु से क्या तू सुखी होगी, मैं ही तो तेरा एक मात्र पुत्र हूं, मुझे खोकर तुम क्या हासिल कर लोगी। क्यों मुझे जानबूझ कर मौत के मुंह में धकेल रही हो।"

विदुला ने कहा—"तुम वीर कुल में उत्पन्न हुए हो। इस कुल में किसी ने कभी याचना नहीं की। तेरा पूर्वज कभी भी किसी की कृपा का अभिलाषी नही बना। इस वंश में कभी भी किसी ने भयवश किसी के सम्मुख मस्तक नहीं झुकाया। उसी कुल में उत्पन्न हुआ तू याचक, कृपा-अभिलाषी और भय से शत्रु के सम्मुख नत मस्तक होगा। यदि तेरी नसों में इस पवित्र कुल का रक्त अब भी शेष है तो शत्रु के अनुग्रह का याचक बनने की अपेक्षा मृत्यु श्रेष्ठ है। क्षत्रिय होकर तू शत्रु को मस्तक झुकायेगा। क्षत्रिय का सिर कट सकता है किन्तु झुक नहीं सकता। क्षत्रिय निन्दित, अपमानित और दीन बन कर दीर्घ जीवन की अपेक्षा वीर, साहसी बन कर अल्पकालिक यशस्वी जीवन का अभिलाषी होता है। तू भी अपने कुल की यशस्वी परम्परा का अनुगामी बनकर अपना नाम उज्ज्वल कर।

माता विदुला की फटकार सुनकर करुण स्वर में संजय ने निवेदन किया—"मैया! प्राणों के भय से मैं तेरी शरण आया हूं। तू मेरी जननी है फिर भी तेरे हृदय में मेरे प्रति थोड़ा भी वात्सल्य नहीं है। क्या सभी माताएं इतनी कठोर हृदया होती है? तुझे अपने पुत्र के प्राण नहीं, मौत पसन्द है। तुम मां होकर भी मेरे अमंगल की कामना कर रही हो।"

विदुला ने अपने पुत्र के विचार सुनकर ओजपूर्ण वाणी में कहा—संजय! मैं तेरी माता हूं और माता से बढ़कर पुत्र का हित चाहने वाला जगत् में और कोई नही होता। मैं हमेशा तेरे मंगल की कामना करती रही हूं और जो कुछ कह रही हूं उसमें भी तेरी मंगलकामना ही निहित है। दुर्भाग्यवश तू उसे अमंगलकारी समझ रहा है। एक क्षत्रिय नारी वीर माता होने में गौरव का अनुभव करती है। क्षत्रियोचित परम्पराओं के पालन में ही तेरा मंगल है। कायर बन कर प्राणों के मोह से युद्ध स्थल से पलायन करके क्षत्रिय कभी नहीं जीता है। क्षत्रिय विजयी होने के लिए ही जीवित रहता है। रणभूमि में मृत्यु का आलिंगन करना क्षत्रियों को सदा प्रिय रहा है। प्राणों का मोह छोड़ उज्ज्वल कीर्ति और कुल की मर्यादा की रक्षा कर, इसी में तेरा कल्याण है, इसी में तेरा मंगल है। उठ, कायरता त्याग, प्राणों का मोह अपने वीरत्व, तेज और शौर्य के बल पर शत्रुओं का मुकाबला कर। आत्मबल से विरोधियों को रौंद कर उनका मद-मर्दन कर शत्रु से पीड़ित देश की प्रजा का रक्षण

कर, यही वीर पुत्र का धर्म है। एक बार इस मार्ग का अनुसरण कर, मां की हार्दिक इच्छा को पूरी करके दिखला, फिर देखना कि वज्र से भी कठोर समझने वाली तेरी इस मां के हृदय में वीर पुत्र के लिए असीम वात्सल्य और स्नेह छिपा है।"

मां विदुला का एक-एक शब्द संजय को बाण की तरह गहरे तक भेद रहे थे। उसका डगमगाया आत्मबल, पौरुष, तेज और शौर्य पुनः जागृत हो जाता है। मां की इस वीरोचित भावनाओं को सुनकर उसकी कायरता समाप्त हो गयी, प्राणों का भय जाता रहा और उस सिंहनी के पुत्र ने सिंहनाद किया—"बस मां! अब बहुत हो गया। मैं इसी क्षण युद्ध के लिए प्रस्थान करता हूँ, मुझे आशीर्वाद दे। विजयी होकर ही अब तेरे चरणों में मस्तक रखूंगा या फिर रण-भूमि में ही कटकर अपना जीवन सफल करूंगा।"

माता विदुला की छाती गर्व से फूल गयी। अपने बेटे को कर्तव्य पालन की शिक्षा देकर गौरवान्वित हुई। पथ से भटके हुए पुत्र को सही मार्ग-दर्शन प्रदान करने का उसे सन्तोष था। वीरोचित धर्म के प्रति पुत्र को सचेष्ट कर अपने मातृत्व को लज्जित होने से बचाया साथ ही पुत्र को अपने आदर्श की पालना हेतु कृत संकल्प कर कलंकित होने से बचाया। संजय ने जाकर सिंधुराज से भयंकर युद्ध किया। सिंधुराज को अपने प्राण बचाकर भागना पड़ा। विजयश्री के साथ संजय ने जब लौटकर अपनी माँ के चरणों में मस्तक झुकाया तो बाहें फैला कर विदुला ने उसे अपनी छाती से लगा लिया। उसकी आंखों में खुशी के आंसू छलक आये पर चेहरा ओज और गर्व से देदीप्यमान था।

पुरुष ? तर्क का कठपुतला-भर
स्त्री—असीम का अन्तःनिर्भर !

—अज्ञेय (चिन्ता, पृ. 56)

गान्धारी

गान्धार देश के राजा सुबल की पुत्री गान्धारी की गणना उस समय देश की रूपवान् और गुणवान् राजकुमारियों में होती थी। कुरुकुल के अत्यन्त बलवान् राजा धृतराष्ट्र के लिए पराक्रमी भीष्म ने गान्धारी को चुना। गान्धार नरेश सुबल ने पहले तो धृतराष्ट्र को अपनी पुत्री व्याहने का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया क्योंकि धृतराष्ट्र अंधा था। मंत्रियों की सलाह पर कि यदि पराक्रमी भीष्म की मांग स्वीकार नहीं की गयी तो कुरुकुल, जो चक्रवर्ती राजाओं का वंश है, वे बलपूर्वक कन्या को ले जायेंगे तो हमारा अपमान होगा अतः उचित यही है कि भीष्म का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया जाय। राजा सुबल ने धृतराष्ट्र को अपनी कन्या देना स्वीकार कर लिया।

राजकुमारी गान्धारी को जब यह ज्ञात हुआ कि पिता ने उसका विवाह नेत्रहीन धृतराष्ट्र से करना स्वीकार कर लिया है और सती स्त्री को हमेशा पति के अनुरूप ही रहना चाहिए यह सोचकर अपनी आंखों पर पट्टी बांध ली। "मेरे पतिदेव यदि इस संसार को देख नही सकते तो मेरे लिए भी इसका कोई महत्व नहीं है। मैं भी अपनी आंखों से इसे कभी नही देखूंगी।" गान्धारी के इस निश्चय से उसके माता-पिता अवाक् रह गये पर उसका निश्चय अटल जान उसे कुछ भी कहने की हिम्मत नहीं हुई। गान्धारी अपने भाई शकुनि के साथ हस्तिनापुर पहुँचाई गई और वहीं उसका धृतराष्ट्र के साथ विवाह सम्पन्न हुआ।

राजकुमारी गान्धारी अब हस्तीनापुर की रानी बनी। गान्धारी ने कठोर तपस्या कर भगवान् शंकर से एक सौ पराक्रमी पुत्रों की मां बनने का वरदान प्राप्त कर लिया। वरदान के अनुसार एक सौ पुत्र और एक पुत्री दुःशला उत्पन्न हुई। उसके सबसे बड़े पुत्र का नाम दुर्योधन था। ये सौ पुत्र कौरव कहलाये।

दुर्योधन सदा अपने चचेरे भाई पाँडु पुत्र पांडवों से द्वेष रखता था, हमेशा उन्हें कष्ट दिया करता। दुर्योधन को गान्धारी ने हमेशा ऐसा करने से रोका परन्तु दुर्योधन पर धृतराष्ट्र का स्नेह अधिक था, उससे वह उदण्डी बन गया वह अपनी माता गांधारी की सदा उपेक्षा

करता रहा। वनवास व अज्ञातवास का समय पूरा कर पाण्डव जब पुन: हस्तीनापुर लौटे और अपने लिए थोड़ी-सी धरती की मांग की तो दुर्योधन ने उसे ठुकरा दिया। महाभारत से पूर्व श्रीकृष्ण जब पाण्डवों के दूत बनकर आये और दुर्योधन के सम्मुख संधि प्रस्ताव रखा, जिसे गर्व में चूर होकर दुर्योधन ने अस्वीकार कर दिया, उस समय मात्र एक गान्धारी ही ऐसी थी जिसने दुर्योधन को बहुत समझाया कि तुम यह हठ छोड़ दो, पाण्डवों को उनका हक दे दो। धर्मिष्ठा गान्धारी की बात को यदि दुर्योधन स्वीकार कर लेता तो महाभारत का संग्राम शायद टल जाता।

महाभारत का युद्ध प्रारम्भ हुआ। युद्धकाल में प्रतिदिन दुर्योधन माता गान्धारी के पास जाता और युद्ध में अपनी विजय के लिए आशीर्वाद मांगता। गान्धारी ने दुर्योधन को अपना पुत्र होने के बावजूद भी अधर्मी होने के कारण विजयी होने का आशीर्वाद नहीं दिया। अठारह दिन तक अपने पुत्र को वह हमेशा आशीर्वाद स्वरूप केवल यही वाक्य कहती रही—"जहां धर्म है, वहीं विजय होगी।"

पूरे कौरवदल के नष्ट होने पर दुर्योधन भयभीत हो अपनी माता के पास जाकर कहने लगा—"मा! भीम मुझे मार डालेगा, तुम मेरी रक्षा का उपाय बताओ।" गांधारी ने प्रत्युत्तर दिया—"यह उपाय तो तुम्हें धर्मज्ञ युधिष्ठिर ही बता सकते हैं।" जीवन में पहली बार मां की आज्ञानुसार दुर्योधन युधिष्ठिर के पास जाकर अपनी रक्षा का उपाय पूछता है। इसमें माता की आज्ञा पालन से बढ़कर दुर्योधन का मृत्यु से भयभीत होना प्रमुख कारण था फिर भी युधिष्ठिर ने, दुर्योधन जैसे शत्रु को भी जिसने कौनसा कष्ट उन्हें नहीं दिया, पूछने पर सत्य और सही उपाय बताते हुए कहा—"यदि माता गांधारी अपने नेत्रों की पट्टी खोलकर तुम्हारे सर्वांग पर दृष्टि डाल दें तो तुम्हारा शरीर वज्र-सा कठोर हो जायेगा। तुम विवस्त्र होकर अपनी मां के सम्मुख चले जाना, फिर किसी अस्त्र-शस्त्र का तुम पर कोई प्रभाव नहीं होगा।"

श्रीकृष्ण को यह ज्ञात होते ही कि युधिष्ठिर ने दुर्योधन को रक्षा का यह उपाय बताया है, बड़ी दुविधा में पड़ गये। उन्हें ज्ञात था कि गान्धारी यदि इसके सारे अंगों को वज्र के समान बना देगी तो इस दुष्ट को मारना कठिन हो जायेगा। कृष्ण शीघ्र दुर्योधन के पास पहुंचे। दुर्योधन मां के सम्मुख जाने की तैयारी ही कर रहा

था। कृष्ण ने दुर्योधन से अनभिज्ञ होकर सारी बात उससे ज्ञात की, फिर अपनी ओर से सुझाव दिया कि "माता के सम्मुख नंगा जाना उचित नहीं है, तुम जांघिया पहनकर चले जाना। अब तुम बच्चे तो हो नही, तुम्हारे पुत्रों के भी बेटे हो गये हैं, यह अशिष्टता करना तुम्हें शोभा नहीं देता।" कृष्ण का सुझाव दुर्योधन को पसन्द आया। वह माता के सम्मुख जांघिया पहन कर गया और युधिष्ठिर का उपाय माता को बताकर उसे अपनी आंखों से पट्टी खोलने का निवेदन किया।

गांधारी ने पट्टी खोलकर देखा, उसका पुत्र जांघिया पहने खड़ा था। गांधारी ने वापिस पट्टी बांधते हुए कहा, दुर्योधन, तू जांघिया पहन कर यदि नहीं आया होता तो तेरा सारा शरीर वज्र-सा कठोर हो जाता और अभय को प्राप्त होता किन्तु अब कटि प्रदेश के अतिरिक्त तेरा सारा शरीर वज्र-सा बन गया है। कालान्तर में जाकर भीम ने दुर्योधन के कटिप्रदेश पर ही गदा का प्रहार कर उस भाग को तोड़ा और उसका अन्त किया।

गांधारी जैसी सती और पतिव्रता नारी के सम्मुख कृष्ण भी सतर्क और सावधान होकर जाते थे। महाभारत का युद्ध समाप्त हुआ। गांधारी के सभी सौ पुत्र मारे गये, इससे गांधारी का पाण्डवों पर क्रोधित होना स्वाभाविक ही था। अपने कुल की सारी विधवा कुलवधुओं के क्रन्दन और विलाप से गांधारी का हृदय विदीर्ण हो रहा था। उसने क्रोध में आकर शाप देने युधिष्ठिर को पुकारा— "राजा युधिष्ठिर कहां हैं?"

"मैं क्रूर कर्मा युधिष्ठिर, जिसके कारण आपके सारे पुत्रों का संहार हुआ, आपके सम्मुख उपस्थित हूं। मेरे कारण यह महाभारत हुआ और अपने स्वजातीय बंधुओं व पृथ्वी के श्रेष्ठ वीरों की मृत्यु का कारण मैं ही हूं। माता मैंने घोर अपराध किया है, मुझे आप शाप दें। अपने कुल का नाश करवा कर मुझे अब राज्य, धन या जीवन का क्या करना है।" युधिष्ठिर ने गांधारी के सम्मुख उपस्थित होकर कहा। गांधारी के क्रोधित नेत्रों की दृष्टि पट्टी में से युधिष्ठिर के हाथ के नाखूनों पर पड़ी, इसके पड़ते ही युधिष्ठिर के हाथों के लाल-लाल नाखून काले रंग में परिवर्तित हो गये। यह देख अर्जुन इत्यादि पाण्डव भयभीत हो इधर-उधर पीछे हटने लगे।

कृष्ण ने गांधारी को शान्त करने के लिए कहा—"तपस्विनी!

आप अपने आप को संयत और शान्त करें ! पाण्डव आप ही के पुत्र हैं और इस महाभारत में आपके कहलाने वाले यही शेष बचे हैं, इन पर क्रोध न करें। आप हमेशा ही यह कहती रही हैं कि धर्म की ही विजय होती है। आज आपके ही वचन सत्य हुए हैं। अब धैर्य रखो और कुलवधुओं को सान्त्वना प्रदान करो।"

गांधारी ने कृष्ण को शाप देते हुए कहा—हे कृष्ण ! कौरवों और पाण्डवों की आपसी फूट से यह महाभारत हुआ यह मैं जानती हूँ पर तुम स्वयं समर्थ होते हुए भी मेरे कुल का संहार उपेक्षित भाव से देखते रहे। इसका फल तुम भोगोगे। अपने पातिव्रत्य के प्रभाव से मैं तुम्हें शाप देती हूं कि आज से छत्तीसवें वर्ष में तुम अपने कुल का संहार भी इसी तरह देखोगे। आज जैसे कुरुकुल की स्त्रियां रो रही हैं वैसे ही यदुकुल की स्त्रियां भी रोयेंगी।"

गांधारी अपने पति धृतराष्ट्र सहित पन्द्रह वर्षों तक पाण्डवों के साथ आदरपूर्वक रहे। इसके पश्चात् तपस्या के लिए गांधारी और धृतराष्ट्र हरिद्वार चले गये। वे विभिन्न वनों में घूमते रहे। कठोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते हुए उन्होंने अपना शरीर छोड़ा।

पुरुषों का क्षणिक दुख तो क्षण भर में ही जाता है,
लेकिन जिसे सदा दुःख सहना पड़ता है वह है नारी।

—शरत्चन्द्र (नारी का मूल्य, पृ 28)

जब देश में कोई विशेष नियम प्रतिष्ठित होता है, तब वह एक ही दिन में नहीं, बल्कि बहुत धीरे-धीरे सम्पन्न हुआ करता है। उस समय वे लोग पिता नहीं होते, भाई नहीं होते, पति नहीं होते—होते हैं केवल पुरुष। जिन लोगों के सम्बन्ध में ये नियम बनाए जाते हैं, वे भी आत्मीया नहीं होती, बल्कि होती है केवल नारियां।

—शरत्चन्द्र (नारी का मूल्य, पृ. 21)

कुन्ती

शूरसेन की पुत्री पृथा परम सुन्दरी और सात्विक प्रवृत्ति की कन्या थी। शूरसेन की बुआ का पुत्र कुन्तीभोज ने, जिसके कोई सन्तान न थी, पृथा को गोद लिया। यही पृथा कुन्तीभोज की दत्तक पुत्री होने के कारण कुन्ती नाम से विख्यात हुई।

राजा कुन्तीभोज ने अपनी प्रिय राजकुमारी के लिए स्वयंवर का आयोजन किया। कुन्ती ने पाण्डु के गले में जयमाला पहनाई। विवाह के उपरान्त पाण्डु कुन्ती सहित हस्तिनापुर लौटे। पाण्डु ने आखेट में मृगवेषधारी किन्दम नामक ऋषिकुमार पर बाण चलाया, जिससे वह मर गया। मरते समय मृग ने अपना ऋषिकुमार का रूप प्रकट कर पाण्डु को शाप दिया कि "सहवास करते मृग को तुमने मारा, इस अपराध के फलस्वरूप पत्नी से सहवास करते समय तुम्हारी मृत्यु होगी।" पाण्डु ने विरक्त हो सन्यास धारण करने का विचार किया, किन्तु कुन्ती ने उन्हें ऐसा करने से रोका।

कुन्ती ने बचपन में मंत्र शक्ति से सूर्य का आह्वान किया था और सूर्य के अंश से उन्हें एक पुत्र की प्राप्ति हुई थी जिसे लोकलाज के भय से पिटारी में बंद करके नदी मे बहा दिया था। अधिरथ नामक सारथि को यह पिटारी प्राप्त हुई और उसने उसका पालन-पोषण किया, यही सूत पुत्र वीर कर्ण और दानी कर्ण के रूप में विख्यात हुआ।

सन्तानहीन पाण्डु बड़े दुखी थे, उन्होने माद्री नामक राजकुमारी से एक और विवाह भी किया पर दो दो रानियां होते हुए भी सन्तानहीन पिता का मन बडा सन्तप्त रहता था। पितृ ऋण से उऋण होने के लिए सन्तान आवश्यक मानी जाती है। उन्होंने तपस्या की, ऋषियों ने उन्हें देवांश से पांच पुत्रों की प्राप्ति का वरदान दिया। पाण्डु ने कुन्ती से सन्तति प्राप्ति के लिए कोई यत्न करने को कहा तो कुन्ती ने निवेदन किया "मेरे आह्वान करने पर देवता उपस्थित हो सकते है, मुझे दुर्वासा ऋषि द्वारा यह मंत्र सिद्धि मिली है अतः आप आज्ञा दें, आपको कैसा पुत्र चाहिए, किस देवता का आह्वान करूं।"

कुन्ती के यह वचन सुनकर पाण्डु के संतप्त मन की वेदना समाप्त हुई और अपने पति की आज्ञानुसार धर्मराज से धर्मात्मा पुत्र युधिष्ठिर, पवन के अंश से पराक्रमी पुत्र भीमसेन व देवराज इन्द्र के अंश से श्रेष्ठ पुत्र अर्जुन नामक इन तीन पुत्रों की प्राप्ति की। पति की आज्ञा पाकर अश्विनीकुमारों के अंश से माद्री नामक दूसरी रानी को भी नकुल और सहदेव ये दो पुत्र कुन्ती ने प्रदान किये। पाण्डु के ये पांचों पुत्र—युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव 'पांच पाण्डव' के नाम से विख्यात हुए।

शाप के प्रभाव से पाण्डु माद्री के साथ सहवास करते समय मृत्यु को प्राप्त हुए। माद्री अपने पति के साथ सती हो गयी और पांचों पुत्रों को पालने का भार कुन्ती पर आ गया। अपने तीन पुत्र तथा माद्री के दो पुत्र सबको समान भाव से पाला और ममत्व प्रदान किया। सहदेव और नकुल को कभी यह आभास नही हुआ कि हमारी माता दिवंगत हो चुकी है और कुन्ती हमारी विमाता है। इतना स्नेह और वात्सल्य कुन्ती जैसी विमाता ही उन्हे प्रदान कर सकती थी।

अत्याचारी दुर्योधन के कारण पांडवों को अनेक प्रकार का कष्ट सहना पड़ा व विभिन्न प्रकार के संकटों व विपत्तियों का सामना करना पड़ा। अपने पुत्रो के संकट मे माता कुन्ती हमेशा उनके साथ रही। उनके कष्टों में सहयोगी वन उसने अपने पुत्रो को सदा धर्म और नीति पर चलने की शिक्षा दी। साथ ही विपत्तियों व कष्टों का डटकर मुकाबला करने हेतु अपने पुत्रो को सदा प्रेरणा व सम्वल प्रदान करती रही। माँ के वात्सल्य और स्नेह की स्निग्ध छाया तले पाण्डवों ने हर कष्ट को हंसते हंसते सहा।

कृष्ण के शान्ति दूत वनकर दुर्योधन की राज्यसभा में जाने पर भी कोई परिणाम नहीं निकला। दुर्योधन विना युद्ध के सुई की नोंक के वरावर भी भूमि देने को तैयार न था। ऐसी स्थिति में भी युधिष्ठिर द्वारा किसी समझौते द्वारा शांति स्थापना का कार्य कुन्ती को वड़ा वेतुका लगा। कुन्ती ने अपने पुत्रों को क्षत्रियोचित कर्त्तव्य का पालन करने की सीख देते हुए कहा—"युधिष्ठिर! तुम जिस शांति की आशा में सन्तोष करके बैठे हो, ऐसा सन्तोष तुम्हारे पिता और पितामह को कभी प्रिय नहीं था। दुर्योधन से अपने लिए याचना करना तुम्हारे लिए उपयुक्त नहीं है। याचना तो ब्राह्मणों को शोभा देती है, तुम तो क्षत्रिय हो, भुजवल से अपना राज्य प्राप्त

करो। पांच-पांच वीर श्रेष्ठ पुत्रों की मां होने के बाद भी मैं दूसरों की कृपा पर आश्रित रहकर अपना जीवन बीताऊं, इससे बढ़कर और कष्ट की कौनसी बात मेरे लिए होगी। क्षत्राणियां जिस दिन के लिए पुत्र उत्पन्न करती हैं वह समय अब आ गया। अर्जुन बेटे! तुम्हारे गाण्डीव की परीक्षा, व भीमसेन! तुम्हारे गदा के पराक्रमी प्रहारों का समय आ गया है। मांगने से भीख भी नहीं मिला करती फिर राज्य तो कैसे मिलेगा।"

मां के वचनों से पांचों पाण्डव युद्ध करके अपना राज्य हस्तगत करने को सचेष्ट हुए। कौरव और पाण्डवों के मध्य भयंकर संघर्ष होता है और इस समर में कौरवों को परास्त कर पाण्डव विजयी होते हैं। मां कुन्ती के आशीर्वाद से पाण्डवों की यश-कीर्ति आज भी अमर है।

स्त्रियः साध्व्यो महाभागाः सम्मता लोकमातरः।
धारयन्ति महीं राजन्निमां सवनकाननाम्॥

हे राजन्! साध्वी स्त्रियां महाभाग्यशालिनी होती हैं तथा संसार की माता समझी जाती हैं। वे अपने पतिव्रत के प्रभाव से वन और काननों सहित इस पृथ्वी को धारण करती हैं।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, 43/20)

पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्राश्च स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति॥

पिता स्त्री की कुमारावस्था में, पति युवावस्था में तथा पुत्र वृद्धावस्था में रक्षा करता है। स्त्री को स्वतंत्र नहीं रहना चाहिए।

—वेदव्यास (महाभारत, अनुशासन पर्व, 46/14)

माद्री

मद्रदेश के राजा शल्य की बहिन माद्री का विवाह राजा पाण्डु के साथ हुआ। पाण्डु जिसका एक विवाह पहले ही कुन्तीभोज की कन्या कुन्ती से हो चुका था। भीष्म पितामह के आग्रह को राजा शल्य टालने में असमर्थ था अतः उसे आखिर स्वीकार कर अपनी बहिन का विवाह पाण्डु के साथ करना पड़ा। एक दिन आखेट करते समय पाण्डु ने सहवास करते मृग को मार डाला। मृग वास्तव में किन्दम नामक ऋषिकुमार था, उसने मरते समय अपना रूप प्रकट कर पाण्डु को भी यही शाप दिया कि—"सहवास करते समय मुझे मारने का तूने नृशंस कृत्य किया है अतः तेरी भी मृत्यु इसी प्रकार होगी।"

शाप-पीड़ित हो पाण्डु ने सन्यास लेने का विचार किया किन्तु कुन्ती और माद्री ने सन्यास न लेकर वानप्रस्थ आश्रम में रहते हुए तपस्या करने का निवेदन किया जिससे उन दोनों को पति का सानिध्य और सेवा का अवसर प्राप्त हो सके। पाण्डु ने अपनी दोनों पत्नियों की बात स्वीकार करते हुए सम्पूर्ण वस्त्राभरण का परित्याग कर राज्य तथा सम्पति धृतराष्ट्र को सौंपकर तपस्वियों का-सा जीवन व्यतीत करने लगा। दोनों पत्नियां कुन्ती और माद्री उसके साथ थीं। पाण्डु के आदेशानुसार कुन्ती ने धर्म, वायु और इन्द्र का आह्वान कर युधिष्ठिर, भीम तथा अर्जुन नामक पुत्र प्राप्त किये। माद्री ने भी सन्तान के लिए जब पाण्डु से प्रार्थना की तो पाण्डु ने अपनी प्रसन्नता के लिए माद्री को भी सन्तान देने का कुन्ती से अनुरोध किया। कुन्ती ने माद्री को किसी एक देवता का ध्यान करने को कहा। माद्री ने अश्विनीकुमारों का ध्यान किया। कुन्ती के मन्त्र के प्रभाव से वे उपस्थित हुए और उनके अंश से माद्री के नकुल और सहदेव उत्पन्न हुए।

प्रारब्ध को कौन टाल सकता है। शाप के प्रभाव से पाण्डु ने वन में अत्यन्त रूपवती पत्नी माद्री को एकाकी पाकर संयम से बाहर हो गये। माद्री ने पति को बहुत समझाया पर पाण्डु पर कोई असर

नहीं हुआ। माद्री से सहवास करते समय उसका शरीर निष्प्राण हो गया।

माद्री ने कुन्ती को पुकारा। कुन्ती ने आकर देखा तो स्तब्ध रह गयी। फिर सभल कर माद्री को कहा—"तुम बच्चों को सम्भालो, मैं बड़ी पत्नी हूँ, अतः पति के साथ सती होऊंगी।" कुन्ती की यह बात सुन माद्री ने निवेदन किया—"बहिन ! मैं जानती हूं, सती होने का प्रथम अधिकार तुम्हे ही है पर मैं छोटी बहिन होने के नाते अनुरोध करती हूँ कि यह अधिकार मुझे दो। मैं युवती हूं, अनुभवहीन हूँ, मेरी ही आसक्ति के परिणाम स्वरूप पति को शरीर त्यागना पड़ा है इसलिए मुझे यह अवसर दो कि मैं अपने इस अधम शरीर का परित्याग कर आत्मक्लेश से छुटकारा पाऊं। अपने बच्चों की भांति ही तुम मेरे बच्चों का पालन भी करना।"

कुन्ती माद्री के आग्रह को अस्वीकार नहीं कर सकी। काष्ठ-चयन के बाद माद्री ने चिता तैयार कर पति के साथ अपनी देह का परित्याग किया। अपने छोटे पुत्रों का स्नेह त्याग कर पति परायणा माद्री ने पति के साथ जलकर अपनी इहलीला समाप्त की।

स्त्रीणामशिक्षितपटुत्वममानुषीषु
संदृश्यते किमुत याः प्रतिबोधवत्यः।
प्रागन्तरिक्षगमनात्स्वमपत्यजात-
मन्यैर्द्विजैः परभृताः खलु पोषयन्ति॥

स्त्रियों में जो मनुष्य-जाति से भिन्न स्त्रियां है, उनमें भी बिना शिक्षा के ही चतुरता देखी जाती है; जो ज्ञान सम्पन्न हैं, उनका तो कहना ही क्या ! कोयल आकाश में उड़ने की सामर्थ्य होने तक अपने बच्चों का अन्य पक्षियों से पालन करवाती है।

—कालिदास (अभिज्ञानशाकुन्तल, 5/22)

वेदवती

राजा कुशध्वज की तपस्या से प्रसन्न हो स्वयं साक्षात् महालक्ष्मी ने पुत्री रूप में प्रकट होने का वरदान दिया। महारानी मालावती के गर्भ से समय पर पुत्री का जन्म हुआ। नवजात कन्या द्वारा वेदमंत्रों का सस्वर गान सुन कर सभी आश्चर्यचकित रह गये। माता मालावती और पिता कुशध्वज ने ऐसी पुत्री पाकर अपने आप को धन भाग्य समझा और आनन्द विभोर हो उठे।

कुशध्वज ने अपनी पुत्री का नाम वेदवती रखा। वेदवती अभी निरी बालिका ही थी कि माता और पिता से वन में जाकर तपस्या करने की आज्ञा मांगी। राजा कुशध्वज व महारानी मालावती ने अपनी पुत्री वेदवती को बहुत समझाने-बुझाने का प्रयास किया किन्तु उसका कोई असर नहीं हुआ। माता-पिता का अगाध स्नेह भी वेदवती के दृढ़ निश्चय को नही बदल सका। दोनों ने भारी मन व अश्रुपूर्ण आँखों से वेदवती को विदा किया।

वेदवती ने पुष्कर को अपना तपस्या क्षेत्र चुना। कठोर तप के कारण उसका शरीर बहुत दुबला और क्षीण हो गया। एक मन्वन्तर की कठिन तपस्या के पश्चात् उसे मनचाहा वरदान प्राप्त हुआ। वेदवती पुष्कर को छोड़कर गन्धमादन पर्वत पर जाकर पुनः तपस्या में लीन हो गयी। गगन मार्ग से जाते हुए राक्षसराज रावण ने उस तपोलग्न अप्रतिम सौन्दर्य राशि को देखा और उस पर मोहित हो गया। कामान्ध रावण ने ज्योंही वेदवती का हाथ पकड़ा तो क्रोधित हो वेदवती ने अपने तपोबल से उसे काठ की भांति जड़ और स्थिर कर दिया। रावण के सारे अंग चेष्टाहीन हो गये और वह अत्यन्त व्याकुल हो मन-ही-मन वेदवती की स्तुति कर क्षमा मांगी। वेदवती ने दशानन की जड़ता समाप्त कर शाप दिया—"अधम! मेरे ही कारण तेरे सारे परिवार का नाश होगा।" यह कहकर वेदवती ने राक्षस के स्पर्श से अपवित्र हुए शरीर को योगाग्नि में जला कर भस्म कर दिया। यही वेदवती मिथिला नरेश जनक की भूमि से उत्पन्न पुत्री सीता हुई थी। सीता के अपहरण के कारण ही रावण का सपरिवार नाश हुआ।

द्रोपदी

पाञ्चाल देश के राजा द्रुपद की कन्या पांचाली द्रोपदी के नाम से विख्यात हुई। द्रुपद ने अपनी पुत्री के स्वयंवर की जब तैयारी की तो सभाभवन के मध्य एक स्थान पर काफी ऊंचाई पर चक्र बांध रखा था। चक्र के उस ओर एक मछली बांध रखी थी। घूमते हुए चक्र के नीचे तेल से भरी कड़ाही में छाया देखकर जो पांच बाणों से उस मछली को भेदेगा उसी के साथ द्रोपदी का विवाह किया जायेगा। स्वयवर की यह शर्त थी। स्वयवर में सम्मिलित सभी राजा इसमें असफल हो गये। कर्ण को सूत पुत्र होने के कारण यह अवसर नहीं दिया गया था फिर अर्जुन ने सर संधान कर मत्स्य वेध किया। द्रोपदी ने अर्जुन के गले मे जयमाला डाली।

द्रोपदी को लेकर घर पहुँचने पर अर्जुन ने कहा—"मा! हम एक वस्तु जीत कर लाये है।" कुन्ती ने घर के भीतर से ही बिना देखे कह दिया—"पांचो भाइयो में बाटलो, सभी मिलकर उसे उपयोग में लो।" कुन्ती ने बाहर आकर जब द्रोपदी को देखा तो उसे बड़ा पश्चाताप हुआ। माता के वचनों की रक्षार्थ पांचों भाइयों ने उससे विवाह किया और द्रोपदी पांचों पाण्डवो की पत्नी बनी।

दुर्योधन द्वारा पाण्डवों को अनेक प्रकार के कष्ट दिये गये। लाक्षागृह से जीवित बचकर निकलने तथा द्रुपद की पुत्री से विवाह करने के उपरान्त भीष्म के समझाने पर धृतराष्ट्र ने विदुर को भेजकर पांडवों को सम्मान पूर्वक बुला लिया और आधा राज्य बांट कर अलग दे दिया गया। युधिष्ठिर ने इन्द्रप्रस्थ नाम की नयी राजधानी बसायी। युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ किया। यज्ञ के पश्चात् कौरव राजमहल के शिल्प को देख रहे थे। एक जगह जल-कुण्ड को स्थल समझ कर दुर्योधन आगे बढ़ा और उसमें गिर गया। द्रोपदी को हंसी आ गयी, उसने कहा—"अंधो के पुत्र अंधे ही होते है।" यह सुन दुर्योधन बड़ा लज्जित हुआ तथा उसे अपमान का अनुभव हुआ।

दुर्योधन ने अपने अपमान का बदला लेने की ठान रखी थी।

उसने मामा शकुनि से मिलकर मंत्रणा की और युधिष्ठिर, जिनको जुए का बड़ा शौक था, जुआ खेलने के लिए आमंत्रित किया। शकुनि पासे फेंक रहा था और कपटपूर्ण पासों से युधिष्ठिर अगली बाजी जीतने के उन्माद में हर बाजी हारते गये और एक-एक कर उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति, राज्य, अपने भाई और स्वयं को भी दाव पर लगा दिया और सबको हार गये। तब अन्त में द्रोपदी को भी दाव पर लगा दिया। बाजी तो हारनी थी ही। उसे जीतने के बाद दुर्योधन ने द्रोपदी को पकड़ कर लाने का आदेश दिया। दूत के कहने से द्रोपदी नहीं आई तो दुर्योधन का छोटा भाई दुःशासन उसे लेने गया। द्रोपदी दाव पर जीती हुई अब हमारी दासी है।

दुःशासन द्रोपदी के केश पकड़कर घसीटता हुआ उसे राज्यसभा में लाया। पाण्डव, उसके पति सिर नीचा किये बैठे थे। द्रोपदी ने दुर्योधन को कहा—"धर्मराज, जो स्वयं अपने को दाव पर हार चुके थे, उन्हें मुझे दाव पर लगाने का क्या अधिकार था और किस मुंह से तुम मुझे दाव पर जीती हुई बतला रहे हो।" द्रोपदी की इस नीतिपूर्ण बात को दुर्योधन कब सुनने वाला था। दुर्योधन तो क्या भीष्म, द्रोण आदि भी दुर्योधन के भय से चुप बैठे रहे और द्रोपदी की करुण पुकार किसी ने नहीं सुनी।

दुर्योधन ने दुःशासन को आदेश दिया कि देखते क्या हो, तुम इस के सब वस्त्र उतार दो और विवस्त्र कर मेरी बांयी जांघ पर बिठाओ। आदेश पाते ही दुःशासन उठा और द्रोपदी का चीर खींचने लगा। अबला के हाथों में इतनी कहां ताकत थी कि वह दस हजार हाथियों के समान बल वाले दुःशासन का प्रतिरोध करती। उसने आंखें बंद कर द्वारकाधीश कृष्ण का स्मरण किया तो उसने द्रोपदी का चीर बढ़ा कर उसकी लज्जा रखी। दुःशासन साड़ी खींचते-खींचते थक गया पर दस हाथ की उसकी साड़ी का ओर-छोर नहीं था।

इतना बड़ा अपमान सहन करना द्रोपदी के लिए बहुत कठिन था किन्तु विपरीत समय में उसने धैर्य रखा। बारह वर्ष का वनवास जिसमें एक वर्ष का अज्ञातवास भी था, की समयावधि में द्रोपदी अपने पतियों के सुख-दुख की सहभागी बनी। अनगिनत कष्टों को सहा। जब वनवास की अवधि समाप्त हुई तो दुर्योधन अब भी पाण्डवों को पांच गांव देने को राजी नहीं था। अन्तिम प्रयास के

लिए कृष्ण स्वयं विराट् नगर से शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जाने लगे तो द्रौपदी ने कृष्ण को याद दिलाते हुए कहा—

जाहु भले कुरुराज पर, धारि दूतवर-वेश ।
भूलि न जैयो पै वहां, केशव द्रौपदि केश ।।

"हे कृष्ण ! आप शान्तिदूत बनकर हस्तिनापुर जा रहे हैं, यह अच्छी बात है, जाइये, पर आज से बारह वर्ष पूर्व जिस दिन उस दुष्ट दुःशासन ने भरी सभा में मेरे ये बाल खींचे थे उस दिन से ही इनमें कंघी नहीं की गयी है, ये बांधे नहीं गये हैं । मैं इन्हें दुःशासन के रक्त से धोकर ही बांधूंगी । मैंने यह प्रतिज्ञा की है । हे मधुसूदन ! समझौते से शान्ति और दुर्योधन की दी हुई भिक्षा मेरे भीतर जो अन्तर्ज्वाला जल रही है, उसे कदापि शान्त नहीं कर पायेगी । मैं अपने अपमान का प्रतिशोध लेकर रहूंगी । कहिये केशव ! क्या मेरे ये केश आजीवन खुले ही रहेंगे ? यदि पाण्डव कायर हो गये हैं और उनमें युद्ध करने की शक्ति शेष नहीं रही है तो मैं अपने पांचों पुत्रों को आदेश दूंगी, बेटे अभिमन्यु को कहूंगी कि तुम अपनी मां के अपमान का बदला कौरवों से लो । तुम शान्ति दूत बन कर जा रहे हो पर मेरे हृदय की वेदना भूमिखण्डों से तो क्या, साम्राज्य प्राप्ति पर भी शान्त नहीं होगी । मैं तो कौरवों की लाशों को तड़पते हुए देखना चाहती हूँ । मुझे शान्ति नहीं, युद्ध प्रिय है । मैं अपने अपमान को भूल नहीं सकती ।"

द्रौपदी के इस कथन से उसकी आन्तरिक वेदना अभिव्यक्त होती है । वह इस बात में विश्वास रखती है कि वध्य का वध नहीं करने से भी वही पाप होता है जो अवध्य का वध करने से होता है । दुष्ट और आततायी को दण्ड मिलना ही चाहिए । उससे शान्ति की वार्ता करना या आशा रखना बेकार है । आखिर में वही हुआ । कृष्ण के लाख समझाने पर भी दुर्योधन नहीं माना । महाभारत हुआ । दुःशासन के रक्त से अपने केशों को धोकर द्रौपदी ने बरसों से अपने हृदय में प्रज्वलित अपमान की आग को शान्त किया । कुरुवंश के सभी कौरवों का नाश हुआ । पाण्डवों की विजय हुई ।

द्रौपदी जितनी वीर और साहसी थी उतनी ही उदार और कष्ट-सहिष्णु भी । मातृत्व-वेदना की सच्ची अनुभूति केवल मां ही कर सकती है और दूसरा कोई नहीं कर सकता । उसका वात्सल्य और मातृत्व भाव कितना विशाल था कि महाभारत समाप्त हुआ, पाण्डव-

सेना जब रात्रि में शयन कर रही थी। कृष्ण पांचों पाण्डवों और द्रौपदी को लेकर उपलव्य नगर गये हुए थे। उस समय रात्रि में अश्वत्थामा ने आग लगा दी और उसके पुत्र उस अग्नि में जल कर भस्म हो गये। द्रौपदी का हृदय यह दृश्य देख करुण क्रन्दन से चीत्कार उठा। वीर माता को इस बात का दुख नहीं होता यदि उसके पुत्र युद्ध में लड़कर मारे जाते परन्तु जिस क्रूर ढंग से ब्राह्मण अश्वत्थामा ने निर्दयतापूर्वक सोते समय उन्हें मारा, इससे बड़ा दुख हुआ। अर्जुन ने अश्वत्थामा को बाधकर द्रौपदी के सम्मुख ला खड़ा किया और कहा, अपनी इच्छानुसार इसे दण्ड दो। द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा को देखकर द्रौपदी का मातृत्व-भाव असीम विस्तार पर गया और उसने अश्वत्थामा को बंधन मुक्त करने का आदेश दिया—"इसे छोड़ दो। जैसे मुझे पुत्रों का शोक हो रहा है, मैं उनके वियोग में दु.खी होकर रो रही हू ऐसा ही दुख प्रत्येक बच्चे की मां को होता होगा। देवी कृपी (अश्वत्थामा की मां) मेरी तरह पुत्र शोक में दुखी न हो अतः इसे छोड़ दो।" मां की ममता का ऐसा असीम स्वरूप द्रौपदी के अलावा अन्यत्र मिलना दुर्लभ है।

द्रौपदी पतिपरायणा थी और कृष्ण की महारानी सत्यभामा ने तो एक बार उससे पूछा—"बहिन! तुम्हारे पति लोक पालों के समान वीर है। वे सदा तुमसे प्रसन्न रहते हैं, तुम पर कभी रुष्ट नहीं होते। तुम ऐसा क्या व्यवहार करती हो कि वे सदा तुम्हारे वश में रहते हैं।" द्रौपदी ने सत्यभामा को विस्तार से ये सब बातें अपनी दिनचर्या के आधार पर समझायीं कि सहृदयता, प्रेम, परिचर्या, कार्यकुशलता तथा अभिमान रहित होकर सब प्रकार से पति सेवा करने वाली स्त्री के यश और सौभाग्य की वृद्धि होती है और पति उस पर सदा प्रसन्न रहते है।

भर्तृनाथा हि नार्यः।
स्त्रियों के तो पति ही अवलम्ब होते हैं।
—भास (प्रतिमानाटक, 1/5)

सुभद्रा

बलराम की छोटी बहिन सुभद्रा का विवाह अर्जुन के साथ हुआ था। सुभद्रा की कोख से ही वीर बालक अभिमन्यु का जन्म हुआ था। सुभद्रा वीरोचित गुणों से सम्पन्न थी। वीर और साहस के साथ-साथ वह शरणागत वत्सल भी थी।

गंगा किनारे एक बार सुभद्रा अर्द्ध रात्रि में पर्व स्नान करने गयी। वहां उसने एक राजवेशधारी पुरुष को देखा जिसने अपनी सुन्दर घोड़ी वृक्ष से बांध दी और स्वयं गंगा में डूब कर आत्महत्या करने को तत्पर था। सुभद्रा ने अर्द्ध रात्रि में गंगा किनारे आये पुरुष को पूछा—"तुम कौन हो और क्यों डूबने जा रहे हो?"

पुरुष ने सहम कर धीमे स्वर में प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"मैं अभागा अवन्तिपति दण्डिराज हूं। द्वारिकाधीश कृष्ण मेरी इस अत्यन्त प्रिय घोड़ी का अपहरण करना चाहते हैं। मैं द्वारिकाधीश का मुकाबला करने में असमर्थ हूँ और उनके भय से कोई राजा मुझे शरण देने को इच्छुक नहीं अतः मैंने आत्माभिमान बचाने के लिए आत्म हत्या करने का विचार किया है।"

सुभद्रा ने दृढ़ स्वर में अवन्तिपति दण्डिराज को अभय प्रदान करते हुए कहा—"मैं तुम्हें शरण देती हूं, मेरे पराक्रमी पति और वीर पुत्र अभिमन्यु तुम्हारी रक्षा करेंगे। कृष्ण मेरे भाई हैं किन्तु इस कारण तुम जरा भी मन में सन्देह न करना। पाण्डवों की शरण में अपने को निर्भय समझो।"

दण्डिराज अपनी प्रिय घोड़ी को लेकर सुभद्रा के साथ पाण्डवों के पास पहुँचे। सुभद्रा ने अपने पति अर्जुन को सारी बात विस्तार के साथ बतायी तो अर्जुन ने अपने सखा कृष्ण के साथ युद्ध करने में अपने आप को असमर्थ बताया। सुभद्रा ने अपने पति को फटकारते हुए कहा—"आप क्षत्रिय हैं और क्षत्रिय को धर्म पर स्थिर रहना चाहिए। शरणागत की रक्षा करना क्षत्रिय का प्रथम धर्म है। आप अपने सखा के लिए क्षात्र धर्म के आदर्शों का परित्याग करना चाहते हैं, यह क्या क्षत्रियोचित कर्म है? आप यदि अपने सत्य धर्म का निर्वाह करना चाहते हैं तो सहर्ष करें, आपकी अर्द्धांगिनी वचनबद्ध है

श्रौर शरणागत की रक्षा के लिए व क्षात्र धर्म की मर्यादा हेतु मैं स्वयं अपने भाई से युद्ध करूंगी ।"

अपनी पत्नी की ओजपूर्ण बातें व दृढ़ निश्चय के कारण अर्जुन को युद्ध के लिए तैयार होना पड़ा । क्षात्र धर्म के निर्वाह हेतु मात्स्य धर्म का परित्याग किया । कृष्ण ने संदेश भेजकर अर्जुन को दण्डी-राज की घोड़ी द्वारका पहुंचाने की सलाह दी पर अर्जुन ने ऐसा नहीं किया । परिणामस्वरूप अर्जुन और कृष्ण के बीच संग्राम होता है और कृष्ण को जब सारी बात का पता चलता है तो वे दण्डिराज को अभयदान देकर अपनी बहिन के प्रण की रक्षा करते हैं । इतना ही नहीं शरणागत वत्सल अपनी छोटी बहिन सुभद्रा की पीठ थप-थपा कर श्रीकृष्ण ने प्रशंसा की ।

इस वीर जननी से अभिमन्यु-सा पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने महा-भारत के युद्ध में अद्भुत शौर्य और वीरत्व का प्रदर्शन किया । आचार्य द्रोण के चक्रव्यूह का भेदन कर वह वीर पुत्र वीर गति को प्राप्त हुआ । सुभद्रा जैसी तेजस्वी और गुण सम्पन्न नारी की सन्तति से ही पाण्डु वंश की सन्तति-परम्परा अविच्छिन्न रही ।

वचनेन हरन्ति वल्गुना
निशितेन प्रहरन्ति चेतसा ।
मधु तिष्ठति वाचि योषितां
हृदये हालहलं महद्-विषम् ।

स्त्रियां मधुर वचन से आकर्षित करती हैं और तीक्ष्ण वचन से प्रहार करती हैं । उनके वचन में मधु रहता है और हृदय मे हलाहल नामक महाविष ।

—अश्वघोष (सौन्दरनन्द, 8 35)

उत्तरा

उत्तरा राजा विराट की राजकुमारी थी। विराट नगर में राजा विराट के यहां छद्मवेष में रहकर पांडवों ने अज्ञातवास का अपना एक वर्ष का समय बिताया था। अज्ञातवास की समयावधि समाप्त होने पर पांडवों को जब राजा विराट को सही परिचय प्राप्त हुआ तो उसने स्थायी मैत्री के लिए अपनी कन्या उत्तरा का विवाह अर्जुन से करने का प्रस्ताव रखा। पांचों पांडव व द्रोपदी राजा विराट के यहां विभिन्न पदों पर भेष बदलकर सेवा रत रहे थे। युधिष्ठिर ब्राह्मण कंक के रूप में विराट की सभा में पासा बिछाने का काम करता था। भीम रसोइये के रूप में तथा द्रोपदी विराट की महारानी सुदेष्णा की परिचायिका सैरन्ध्री के रूप में कार्यरत थी। अर्जुन ने वृहन्नला के वेश में राजकुमारी उत्तरा को वर्ष भर नृत्य और संगीत की शिक्षा प्रदान की थी।

अतः राजा विराट का प्रस्ताव सुनकर अर्जुन ने कहा—"मैंने वृहन्नला के रूप में राजकुमारी को संगीत व नृत्य की शिक्षा दी है। अब यदि मैं उसे स्वीकार कर लेता हूं तो लोग मेरे चरित्र पर और आपकी पुत्री के चरित्र पर सदेह करेंगे। शिक्षक पिता के समान होता है और मैंने भी आपकी राजकुमारी को पुत्रीवत् मानकर शिक्षा दी है और स्वयं राजकुमारी उत्तरा ने भी मुझे पिता की तरह सदा आदरणीय व पूज्य माना है, अतएव वह मेरी पुत्री के समान है, मैं उसे वधू नहीं, पुत्र वधू के रूप में स्वीकार करता हूं।"

धर्मनिष्ठ अर्जुन की इच्छानुसार उत्तरा का विवाह अभिमन्यु से हुआ। अभिमन्यु अपने पिता की भांति ही वीर और साहसी था। अभी कुछ काल ही बीता था उत्तरा और अभिमन्यु को दाम्पत्य सूत्र में बंधे हुए कि महाभारत के युद्ध की विभीषिका भड़क उठी। महाभारत के इस संग्राम मे एक दिन जब अर्जुन शत्रुओं से युद्ध करते हुए बहुत दूर निकल चुके थे तब द्रोणाचार्य ने चक्रव्यूह का निर्माण किया। जयद्रथ के सम्मुख पाण्डवों का कोई भी वीर चक्रव्यूह में प्रवेश न कर सका। केवल अभिमन्यु ही चक्रव्यूह का भेदन कर भीतर जा

से कौरव दल पर भयंकर प्रहार किया। उस तेजस्वी वीर के प्रहार को देखकर कौरव सेना के सभी सेनानी स्तम्भित रह गये। उन्होंने एक साथ उस पर आक्रमण करने की योजना बनाई। अधर्म पूर्वक आठ महारथियों के संयुक्त प्रहार को झेलते हुए वीर श्रेष्ठ अभिमन्यु खेत रहा।

अपने पति अभिमन्यु की वीरगति के पश्चात् उत्तरा उसके साथ सती होने को तत्पर हुई किन्तु कृष्ण ने उसे समझा बुझा कर रोक लिया। उत्तरा उस समय गर्भवती थी और गर्भवती स्त्री सती नहीं हुआ करती। समय आने पर इसी उत्तरा की कोख से परीक्षित का जन्म होता है। उत्तरा के गर्भ से उत्पन्न यही पुत्र पांडवों के वंश में शेष बचा था। इसी से पांडवों की वंश परम्परा आगे चली।

पुरन्ध्रीणां चित्तं कुसुमसुकुमारं हि भवति।
नारियों का चित्त फूल जैसा कोमल होता है।

—भवभूति (उत्तररामचरित, 4/12)

देहप्रदा: प्राणहरा नराणां
भीरुस्वभावा: प्रविशन्ति वह्निम्।
क्रूरा परं पल्लवपेशलांग्यो
मुग्धा विदग्धानपि वंचयंति॥

स्त्रियां मनुष्यों को जन्म देने वाली किन्तु प्राणों को हरने वाली भी हैं। ये भीरु स्वभाव वाली भी है तथा अग्नि में भी प्रवेश कर सकती है। ये अत्यन्त कठोर भी है, साथ ही पल्लव के समान कोमल अंगों वाली भी है। ये सहज ही मुग्ध हो जाने वाली हैं किन्तु विदग्ध जनों को ठग भी सकती है।

—क्षेमेन्द्र (दर्पदलन 1/66

जना

माहिष्मती के राजा नीलध्वज की महारानी जना वीर प्रवीर की जननी थी। प्रवीर ने चक्रवर्ती युधिष्ठिर के अश्व को माहिष्मती नगरी की सीमा में प्रवेश करते ही पकड़ लिया। अश्व पकड़ने का समाचार पाकर नीलध्वज ने अपने पुत्र प्रवीर को बुला कर डांटते हुए कहा—"प्रवीर ! तुमने अज्ञानतावश जिस अश्व को पकड़ा है उसे छोड़ दो। वह अश्व युधिष्ठिर का है जो चक्रवर्ती महाराजा हैं, अर्जुन जैसे उनके भाई हैं, जिनसे तू युद्ध करने का दुस्साहस नहीं कर सकता। तुमने यदि अश्व को नहीं छोड़ा तो तुम मेरी तथा समस्त शूरों की मृत्यु का कारण बनोगे। सारा राज्य नष्ट हो जायेगा। अतः अब भी समय है, मेरी सलाह मानो और अपनी मूर्खता छोड़ो।"

अपने पिता की बात सुनकर प्रवीर दुखी हुआ और असमंजस में पड़ गया कि मैं अब क्या करूं। अश्व यदि नहीं पकड़ा होता तो और बात थी पर अब पकड़कर उसे छोड़ना कायरता का परिचय देना है। उसने अपनी मनःस्थिति माता जना को बतायी। उस तेजोमयी क्षत्राणी ने अपने पुत्र को दुविधा से उबारा। उसे अपने कर्तव्य पथ पर निःसंकोच बढ़ने हेतु प्रोत्साहित करते हुए कहा—"बेटा ! तुमने यह जो क्षत्रियोचित कार्य किया है, वह ठीक है। इसके लिए किसी प्रकार का पश्चाताप करने की आवश्यकता नहीं। क्षत्रिय पुत्र मृत्यु से भयभीत नहीं हुआ करते। युद्ध में मरकर क्षत्रिय वह गति पाता है जो योगी को प्राप्त होती है। चुनौती पाकर कोई वीर भला कैसे शान्त रह सकता है। बेटे ! तूने आज मेरे दूध की लाज रख ली। मैं तुझ-सा पुत्र पाकर सचमुच आज धन्य हुई हूं। जा तू युद्ध के लिए तैयार हो, तेरे पिता ने जो कुछ कहा उसका बुरा मत मान, अपने कर्तव्य का निर्वाह कर।"

महारानी जना ने इसके पश्चात् अपने पति राजा नीलध्वज को खरी-खरी सुनाते हुए कहा—"महाराज ! लगता है, आपके रक्त में क्षत्रिय के योग्य उष्णता शेष नहीं बची। आप में यह भीरुता कैसे व्याप्त हो गयी। अर्जुन के नाम से आप इतने भयभीत क्यों हो रहे

हैं। पुत्र ने जिस अश्व को पकड़ा है उसे अर्जुन को सौंपकर अपने प्राण बचाइये, अपना राज्य बचाइये, इसी में आप अपनी प्रतिष्ठा मानते हैं तो अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा कीजिये।"

अपनी रानी जना की व्यंग्यपूर्ण बातें सुनकर राजा नीलध्वज ने बताया—"मैं भीरु नहीं हूँ। क्षत्रिय का क्या कर्तव्य होता है, वह मुझे ज्ञात है। अर्जुन यदि अकेला अश्व के साथ होता तो कोई बात नहीं पर मेरे आराध्य श्रीकृष्ण भी तो साथ हैं, उन पर शस्त्र प्रहार कैसे कर सकता हूँ।"

जना ने प्रत्युत्तर में कहा—"क्षत्रिय के लिए भगवान् ने जो धर्म निश्चित कर दिया है उसका पालन ही अपने आराध्य की सच्ची आराधना है। क्षात्र धर्म का परित्याग कर यदि आप अपने आराध्य को सन्तुष्ट करने की आशा रखते हैं तो यह व्यर्थ है। आपको अपने धर्म पर अविचल देखकर स्वयं श्रीकृष्ण प्रसन्न और सन्तुष्ट होंगे। आज उन्हे अपने भक्त के बाण पुष्पों से भी ज्यादा कोमल प्रतीत होंगे। आप संशय का त्याग कीजिये और आपके आराध्य जो पूजा ग्रहण करने आये हैं, उन्हें उसी पूजा अर्थात् युद्ध से सेवित कर कृत-कृत्य होइये।"

अपनी रानी जना के प्रेरणादायी बचनों से राजा नीलध्वज बड़े प्रभावित हुए। उन्हें अपनी पत्नी की बात सत्य प्रतीत हुई। अब उन्होंने विचार बदल कर युद्ध की घोषणा कर दी। युवराज प्रवीर के नेतृत्व में माहिष्मती की सेना ने घनघोर युद्ध किया और युवराज प्रवीर अर्जुन से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। अर्जुन ने युद्ध रोक दिया। राजा नीलध्वज अर्जुन से जाकर मिलता है और अर्जुन को अश्व उपहार रूप में भेंट करता है। महारानी जना, जो क्षत्रियत्व की साक्षात् मूर्ति थी, इस अपमान को कैसे सहन कर सकती थी कि उसके पुत्र का शव तो अभी रणभूमि में पड़ा है और उसके पिता उसका प्रतिशोध लेने की बजाय शत्रु का स्वागत कर रहे हैं, उपहार प्रदान कर रहे हैं। राजभवन से निकलकर वह सीधी गंगा के किनारे पहुँची और उसकी गोद में अपने आपको समर्पित कर अपनी हृदयाग्नि को शान्त किया।

वाकपुष्टा

वाकपुष्टा काश्मीर के प्रतापी राजा तुंजीन की रानी थी। राजा तुंजीन ने प्रजा के हित में बहुत से कार्य किये। रानी वाकपुष्टा भी बड़ी दयालु और परोपकारिणी थी। प्रजा को वह सन्तानवत् समझती थी और उसके दुख निवारण को सदा तत्पर रहती थी।

एक बार सर्दी की ऋतु में अत्यधिक बर्फ गिरने से सारी फसलें नष्ट हो गयीं और काश्मीर में भयंकर अकाल पड़ गया। लोग दाने-दाने को तरसने लगे। भूख से तड़फ-तड़फ कर काल-कवलित होने लगे। चारों ओर काल की भयंकर विभीषिका के कारण हाहाकार मच गया। राजा तुंजीन और रानी वाकपुष्टा ने अपनी प्रजा का आर्तनाद सुना और यह हाल देखा तो उनका हृदय विदीर्ण हो गया। प्रजा की सहायता के लिए राजकोष खाली कर दिया और राज्य की सम्पूर्ण सम्पत्ति अकाल पीड़ित जनता के लिए खर्च कर दी। इतना ही नहीं राजा और रानी खुद गांव-गाव घूम-घूम कर पीड़ितो को अन्न बांटने व भूखों को भोजन कराने के कार्य में जुट गये।

खजाना खाली हो गया। अन्न के भण्डार समाप्त हो गये और अब प्रजा का भूख से तड़फ-तड़फ कर मरने के सिवा और कोई चारा नहीं रहा। यह पीड़ाजनक दृश्य देखकर राजा तुंजीन का धैर्य टूट गया। उसने अपनी रानी से कहा—"मेरे सामने मेरी प्रजा भूख और प्यास से तड़फ-तड़फ कर मर रही है, खजाना व अन्न के भण्डार खाली हैं, ऐसी स्थिति में मैं जीवित नहीं रहना चाहता।" रानी वाकपुष्टा ने राजा की व्यथा को समझते हुए और धैर्य बंधाते हुए कहा—"स्वामी! आत्महत्या करना वीर पुरुषों को शोभा नहीं देता। प्रजा-पालन करना हमारा धर्म है और जब हम स्वयं अपने को समाप्त कर देंगे तो प्रजा का पालन और उसकी रक्षा का प्रयास कौन करेगा।" इस प्रकार आत्महत्या के लिए उद्यत अपने पति को रानी वाकपुष्टा ने रोका। ईश्वर-कृपा से अकाल का प्रभाव समाप्त हुआ। वह कष्टकारी समय बीत गया पर उस काल में रानी वाक-पुष्टा द्वारा किये गये ये दया और पुण्य के कार्य सदियों बाद भी याद किये जाते हैं।

उदयमती

गुजरात के चालुक्य राजा भीम की महारानी उदयमती बड़ी उदार व सहृदया थी। कर्ण नामक राजकुमार इसी का पुत्र था, जो अपनी माता के समान उदार व दयावान् तो था किन्तु जब चन्द्रपुर के राजा की कन्या मयणल्ल देवी से विवाह करने का प्रश्न आया तो कर्ण ने, जो उस समय राजा बन गया था, विवाह करने से इन्कार कर दिया।

राजा कर्ण का मयणल्ल देवी से विवाह न करने का कारण यह था कि मयणल्ल देवी कुरूप और मोटी थी। रूपवती नहीं होने के कारण राजा कर्ण को मयणल्ल पसन्द नहीं आयी, वह किसी सुन्दर राजकुमारी के साथ विवाह करने का इच्छुक था। मयणल्ल ने राजा कर्ण को पति रूप में स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया था और जब उसने अपनी इच्छा कर्ण के सम्मुख रखी और वह कर्ण द्वारा ठुकरा दी गई तो उसने चिता में जलकर प्राण त्यागने का निश्चय किया।

राजमाता उदयमती, जो गुणग्राहक व सुहृदया थी, उसने जब यह सारी बात सुनी तो अपने पुत्र कर्ण को समझाते हुए कहा— "शारीरिक रूप-सौन्दर्य ही मूल्यवान् नही होता, रूप और सौन्दर्य से भी बढकर होता है—हृदय। हृदय के भावो में ही असली सौन्दर्य छिपा होता है। बेटा! तुम बाह्य आकर्षण के प्रति आकृष्ट होकर यदि नारी की परख कर रहे हो तो यह तुम्हारी बड़ी भूल होगी। बाह्य आकर्षण से भी ज्यादा महत्व रखता है, नारी के भीतर का हृदयगत आकर्षण। तुम मयणल्ल देवी जैसी पतिव्रता और समर्पित नारी को अस्वीकार कर उसे जो तिरस्कृत और निराश कर रहे हो यह उचित नही है। क्षत्रिय नारी का रक्षक होता है और तुम एक नारी जो तुम्हारे शरण में स्वेच्छा से आई उसका परित्याग ही नहीं कर रहे उसकी मृत्यु के (आत्मदाह) निमित्त भी बन रहे हो। मुझे नहीं मालूम था कि मेरी कोख से जन्मा पुत्र नारी-सम्मान और नारी-रक्षा का कार्य नहीं कर पायेगा। मेरे लिए भी अब यही शेष रह गया है कि यदि तुम मयणल्ल से विवाह न करोगे तो मैं स्वयं चिता में जलकर प्राण दे दूंगी।" माता के कठोर प्रण की रक्षार्थ कर्ण को आखिर यह विवाह करना पड़ा।

मयणल्लदेवी

चन्द्रपुर की राजकुमारी मयणल्ल चालुक्य नरेश कर्ण की वीरता पर मुग्ध थी। राजा कर्ण वीर होने के साथ-साथ अत्यन्त सुन्दर भी था, अतः मयणल्ल ने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं विवाह करूंगी तो कर्ण से ही करूंगी अन्यथा कुंवारी ही रहूंगी। मयणल्ल के पिता अपनी पुत्री की इस प्रतिज्ञा से बहुत आश्चर्यचकित हुए। वे जानते थे कि मयणल्ल रूपवती नहीं है अतः राजा कर्ण, जो अत्यन्त रूपवान् व वीर है, इसे कैसे स्वीकार करेगा। पुत्री अपने निश्चय पर अटल थी। पिता रात-दिन उसके विवाह की चिन्ता करने लगे।

हाथी देखने के बहाने राजा कर्ण को राज्य सभा से बाहर बुलाकर मयणल्ल ने कर्ण से भेंट की। उनका अभिवादन कर अपना प्रणय निवेदन किया किन्तु कर्ण ने स्पष्ट तौर पर मयणल्ल के साथ विवाह करने से इन्कार कर दिया। राजकुमारी मयणल्ल ने राजा कर्ण को अपने विवेदन और निर्णय से अवगत कराते हुए कहा—"आप जैसे वीर और रूपवान् राजा के लिए मैं योग्य नहीं हूँ फिर भी क्षत्रिय कन्या जिसे एक बार अपना पति चुन लेती है वही उसके जीवन का सर्वस्व हुआ करता है। मैं यह भी जानती हूँ कि मुझ में यह विशेषता नहीं है कि अपने रूप सौन्दर्य और शारीरिक आकर्षण के बल पर आपको आकृष्ट कर सकूं पर यह यौवन और सौन्दर्य सदा नहीं बना रहता। ये सांसारिक प्राणियों का मोह जाल है। मैं सच्चे हृदय से आपको चाहती हूं और यदि आप मुझे स्वीकार नहीं करेंगे तो मेरा जीवित रहना व्यर्थ है। मैंने अपने हृदय में आपको प्रतिष्ठापित कर दिया है, अब किसी अन्य पुरुष का स्वप्न में भी स्मरण करना मेरे लिए महापाप है। इस जीवन में नहीं तो अगले जीवन में मैं आपको अवश्य पति रूप में प्राप्त करूंगी।"

मयणल्ल के कथन का राजा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। उसने चिता में जलकर भस्म होने की तैयारी की। राजमाता उदयमती को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने अपने पुत्र कर्ण को बुलाकर मयणल्ल से शादी करने के लिए समझाया। कर्ण और मयणल्ल का विवाह होता है। मयणल्ल ने अपने सुशील और मृदुल स्वभाव व सेवाभाव से पति और सास का मन जीत लिया। मयणल्ल की कोख से ही चालुक्यों के प्रसिद्ध राजा सिद्धराज का जन्म होता है।

रूपसुन्दरी

मुल्तान की राजकुमारी रूपसुन्दरी गुजरात के राजा जयशिखर की रानी थी। रूपसुन्दरी का सौन्दर्य अप्रतिम था, फिर भी उसे अभिमान छू तक नहीं गया था। विवेक, विनय और सहिष्णुता आदि गुणों से सम्पन्न होने के कारण उसकी सर्वत्र ख्याति फैल गयी। गुजरात के समीप ही स्थित भुवड़ नामक राज्य का राजा, जिसकी सैन्य शक्ति गुजरात से बहुत अधिक थी, गुजरात की समृद्धि और रूपसुन्दरी की प्रसिद्धि से ललचाकर उस पर आक्रमण कर दिया। युद्ध का परिणाम पहले ही ज्ञात था फिर भी अपने पति को युद्ध के लिए रूपसुन्दरी ने तैयार किया। युद्ध के भय से पलायन करना या भागना क्षत्रिय का धर्म नहीं होता। क्षत्रिय तो प्रजा की रक्षार्थ युद्ध में प्राणोत्सर्ग करना अपना पुनीत कर्म मानता है। इसी भाव से जयशिखर ने युद्ध किया और उसमें वीरगति को प्राप्त हुआ।

रानी रूपसुन्दरी उस समय गर्भवती थी। अपने पति और राज्य को समाप्त हुआ देख वह अपने गर्भस्थ शिशु एवं स्वयं के सतीत्व की रक्षार्थ वन में भाग गई। जंगल में गरीब भीलनी के साथ रहकर अपने कष्ट के दिन बिताने लगी। वहीं उसने एक पुत्र को जन्म दिया जिसका नाम वनराज रखा। रूपसुन्दरी ने अपने पुत्र का लालन-पालन किया और जब वह शस्त्रास्त्र विद्या मे पारंगत होकर युवावस्था को प्राप्त हुआ तब उसने अपने पिता का बदला लेने की बात वनराज से कही। वनराज ने भीलों की सेना तैयार कर भुवड़ के राजा पर आक्रमण किया। युद्ध में उसे परास्त कर अपने देश गुजरात पर पुनः आधिपत्य स्थापित किया।

रानी रूपसुन्दरी के प्रयास और सतत् प्रेरणा का ही यह परिणाम था कि पति द्वारा हारे गये राज्य को उसने अपने पुत्र को योग्य और वीर बनाकर पुनः हस्तगत किया।

रानीबाई

सिंध के शासक दाहिर के समय से हिन्दुस्तान पर यवन आक्रमण की शुरुआत होती है। बगदाद के खलीफा के आदेशानुसार सन् 712 ई. में मोहम्मद बिन कासिम ने सिंध के राजा दाहिर पर चढ़ाई की। दाहिर ने यवन आक्रमणकारी का डटकर मुकाबला किया। राजपूत सैनिकों ने भयंकर युद्ध किया। दाहिर स्वयं रणभूमि में शत्रु से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ।

पति की मृत्यु के पश्चात् दाहिर की वीर पत्नी रानीबाई (जिसको 'लाडी' नाम से भी जाना जाता है) ने युद्ध की कमान सभाली और यवनों से संघर्ष जारी रखा। राजा दाहिर की मृत्यु के उपरान्त भी अपने वीर सैनिकों को हतोत्साहित नहीं होने दिया। उनके हृदय में उत्साह और वीरता का संचार कर उनके मनोबल को ऊंचा बनाये रखा। राजपूत वीर यवन आक्रान्ताओं पर दुगने जोश से टूट पड़े। पहले तो ऐसा आभास हुआ कि राजपूत सैनिक विजय प्राप्त कर लेंगे किन्तु यवन आक्रान्ताओं के सामने वे अल्प सख्या में होने के कारण अधिक समय तक टिक नहीं सके।

राजमहिषी रानीबाई ने युद्ध का परिणाम अपने प्रतिकूल देख किले के भीतर की समस्त नारियों को एकत्र कर अपना अन्तिम निर्णय सुनाते हुए कहा—"यवन युद्ध में विजय की ओर अग्रसर हो रहे हैं। शीघ्र ही इस किले पर उनका अधिकार हो जायेगा। इससे पहले कि शत्रु का इस किले पर अधिकार हो हमें अपनी स्वाधीनता और सतीत्व की रक्षा के लिए वीर नारियों की भांति अपने कर्तव्य का शीघ्र पालन करना चाहिए।"

रानीबाई की बात का सभी राजपूत रमणियों ने समर्थन किया और विशाल अग्निकुण्ड तैयार किया गया। सर्वप्रथम रानीबाई जलती ज्वालाओं के बीच कूद पड़ी और अन्य सभी राजपूत नारियों ने उसका अनुसरण किया। यवन आक्रान्ताओं के हाथ में पड़कर सतीत्वहीन दासता का जीवन बिताने की अपेक्षा राजपूत रमणियों को चिता की लपटों का आलिंगन कर अग्नि में अपना सर्वस्व अर्पण कर देना प्रिय रहा है। रानीबाई इसी आदर्श का निर्वाह कर सतियों की पथप्रदर्शिका बनी।

पुष्पावती

चन्द्रावती के परमार राजा की राजकुमारी पुष्पावती बहुत ही रूपवती, वीर हृदया और गुण सम्पन्न थी। वल्लभीपुर के समृद्धिशाली राजा शीलादित्य के साथ उसका विवाह सम्पन्न हुआ। ऐश्वर्यशाली राज्य की महारानी होते हुए भी पुष्पावती का अधिकांश समय ईश्वर-आराधना, जप-तप आदि धार्मिक व शुभ कार्यों में व्यतीत होता था। वल्लभीपुर से कुछ दूरी पर स्थित अम्बा देवी के मन्दिर में एक बार मनौती चढ़ाने गयी हुई थी, उस समय अचानक वल्लभीपुर पर आक्रमण होता है। शीलादित्य इस आक्रमण का प्रतिरोध करते हुए वीरगति को प्राप्त हो जाता है। वल्लभीपुर के अन्त:पुर में रहने वाली सभी नारियों ने चिता की ज्वाला में अपनी प्राणाहुति दे दी। वह विशाल राजभवन श्मसान की तरह सुनसान हो गया।

अम्बा देवी के मन्दिर से लौटते समय रानी पुष्पावती को वल्लभीपुर का दूत सारी घटना की जानकारी देता है तो वह पालकी से उतर वहीं चिता सजाने की आज्ञा देती है। पति के वीरगति प्राप्त करने के पश्चात् राजपूत नारी को एक पल का जीवन भी भार लगता है। साथ के सैनिकों के यह समझाने पर कि "गर्भवत् बालक की रक्षार्थ आप अभी अपने प्राणों की आहुति न दें, माता का कर्तव्य निभायें।"

रानी पुष्पावती ने उस समय अपने गर्भस्थ शिशु की रक्षार्थ सती होने का विचार स्थगित कर दिया और मलय पहाड़ के जंगल में अपने दिन बिताने लगी। कुछ समय पश्चात् रानी के गर्भ से एक राजकुमार का जन्म हुआ, जिसका नाम 'गुह' रखा गया। पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् पुष्पावती के लिए अब एक क्षण भी जीवित रहना महा दुखदायी था। सद्यजात शिशु के लालन-पालन का भार एक धर्मपरायण ब्राह्मण कन्या को सौंपकर चन्दन की चिता तैयार की। मातृत्व कर्म का निर्वाह कर पुत्र जन्म के पश्चात् पति परायणा पुष्पावती सती हो जाती है। जिस पुत्र रत्न की प्राप्ति की इच्छा हर मां को होती है उस पुत्र रत्न का परित्याग कर पुष्पावती ने मातृत्व से भी अधिक पतिव्रत धर्म को महत्व देते हुए चिता में भस्म होकर स्वर्गगमन किया।

सुन्दरबाई

शैलपुर के राजा केसरीसिंह की षोडसी राजकुमारी सुन्दरबाई अपनी समवयस्क सहेलियों के साथ उद्यान में विहार कर रही थी। एक दिन आमोद-प्रमोद में मस्त हो उसकी हर सहेली जब अपने भावी पति के सम्बन्ध में मधुर कल्पनाएँ प्रकट कर जी वहला रही थी उस समय राजकुमारी सुन्दरबाई ने भी अपनी भावाभिव्यक्ति प्रकट करते हुए कहा—"मैं तो वल्लभीपुर के राजकुमार वीरसिंह को पति के रूप में प्राप्त कर उसे अपनी वीरता और पराक्रम से मोहित करना चाहती हूं।" राजकुमारी व सखियों के इस वार्तालाप को संयोग से वीरसिंह ने सुना जो उसी उपवन में एक पेड़ के नीचे विश्राम कर रहा था।

राजकुमार वीरसिंह सुन्दरबाई के वीरत्वपूर्ण वचनों से बड़ा प्रभावित हुआ। वह उसे अपनी सहधर्मिणी बनाकर परीक्षा लेना चाहता था अतः उसके पिता के पास विवाह का सन्देश भेजा और विवाह सम्पन्न हुआ। अपनी दुल्हन को वीरसिंह ने अपने वचनों की याद दिलाई जो उसने बगीचे में कहे थे। "राजपूत नारी अपने वचनों पर कितनी दृढ होती है, इसका मैं आपके सम्मुख अवश्य उदाहरण प्रस्तुत करूंगी।" सुन्दरबाई ने अपनी प्रतिज्ञा फिर दुहरायी।

पिता के पास से गुप्त रूप से उसने अपने लिए घोड़ा, कवच इत्यादि आवश्यक सामग्री मंगवा कर उस वीर क्षत्राणी ने पुरुष पोशाक धारण की। वल्लभीपुर के राज दरबार में वीर वेष धारण कर रत्नसिंह के रूप में उसने नौकरी की। राजकुमार वीरसिंह और रत्नसिंह में प्रगाढ़ मित्रता स्थापित हो गयी।

कुछ ही दिनों पश्चात् वल्लभीपुर पर समीपवर्ती राज्य के शासक ने आक्रमण किया। वल्लभीपुर की सेना ने डटकर मुकाबला किया और रत्नसिंह के युद्ध-कौशल व भयंकर प्रहार के आगे शत्रु-सेना भाग खड़ी हुई। रत्नसिंह इस युद्ध में बहुत घायल हो, युद्ध मैदान में गिर पड़ा। राजकुमार वीरसिंह ने अपने प्रिय साथी रत्नसिंह को युद्ध मैदान से उठाकर उसके घावों की मरहम-पट्टी करने हेतु राजवैद्य बुलाया। कवच उतारते समय ज्ञात हुआ कि पुरुष वेशधारी यह तो कोई स्त्री है। पहचानते देर नहीं लगी, यह सुन्दरबाई ही थी जिसने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए ऐसा किया। वीरसिंह अपनी वीर पत्नी सुन्दरबाई की वीरता पर मुग्ध होकर उसी क्षण उसे बाहुपाश में बांध कण्ठ से लगाया।

अच्छन कुमारी

चन्द्रावती के राजा जैतसिंह की पुत्री अच्छन कुमारी ने पृथ्वीराज चौहान की वीरता और दृढ़ निश्चयता पर मुग्ध हो उन्हें पति रूप में स्वीकार कर लिया था। चन्द्रावती एक छोटी-सी रियासत थी। उसके पिता जैतसिंह को अपनी पुत्री के मन की बात जब ज्ञात हुई तो उन्होंने अच्छन कुमारी को अपनी आशंका व्यक्त करते हुए कहा—"बेटी, तुम्हारा निर्णय तो अच्छा है, मैं इससे सहमत हूँ, पर यदि पृथ्वीराज ने यह रिश्ता स्वीकार नहीं किया तो क्या होगा ?"

वीर बाला अच्छन कुमारी ने तुरन्त जवाब दिया—"पिताजी, आपकी यह आशंका व्यर्थ है। मुझे पूरा विश्वास है कि वे यदि सच्चे राजपूत हैं तो एक राजपूत कन्या की बात कभी अस्वीकार नहीं करेंगे और कर भी देंगे तो आप निश्चिन्त रहिए, मुझे अपना कर्त्तव्य मालूम है। मैं आजन्म कुमारी रह सकती हूं पर अन्य किसी के साथ मेरा अब सम्बन्ध होना असम्भव है। राजपूत कन्या जिसे एक बार अपना पति स्वीकार कर लेती है, वही उसका वरेण्य है।

इसी बीच गुजरात के राजा भीमदेव ने राजकुमारी अच्छन के साथ विवाह करने का प्रस्ताव भेजा। अच्छन के पिता ने कहलवाया कि "उसकी मंगनी पृथ्वीराज से हो चुकी है अतः उसका विवाह पृथ्वीराज से ही होगा।" भीमदेव ने इसे अपमान समझा और उस पर आक्रमण कर दिया। जैतसिंह ने अजमेर के शासक पृथ्वीराज के पिता राजा सोमेश्वर से सहायता मांगी। सोमेश्वर स्वयं उस समय दो विकट परिस्थितियों से घिर गये। उनके सम्मुख एक प्रश्न म्लेच्छों को दूर कर देश-रक्षा का था तो दूसरी ओर अपनी पुत्र वधू की मान रक्षा का। अपने प्रधान सेनापति को यवन आक्रान्ताओं से लड़ने हेतु भेजा और स्वयं भीमदेव से युद्ध करने हेतु चन्द्रावती की ओर प्रस्थान किया। अपने पुत्र पृथ्वीराज को अच्छन कुमारी से विवाह करने का आदेश देकर स्वयं राजपूत कन्या के मान की रक्षा करते भीमदेव से युद्ध करते हुए वे वीरगति को प्राप्त हुए।

अपने पिता के आदेशानुसार और अच्छन कुमारी की मान की

रक्षा करने के लिये पृथ्वीराज ने उससे अचलगढ़ के किले में विवाह की रस्म सम्पन्न की। पिता की मृत्यु के उपरान्त पृथ्वीराज अपने पिता की राज्य गद्दी पर बैठता है। वह भी अपने पिता की भांति देश की रक्षा के लिए सदैव यवन आक्रान्ताओं से जूझने को तत्पर रहा। मोहम्मद गोरी को 17 बार परास्त कर उसने अपने शौर्य और वीरत्व का जो अद्‌भुत प्रदर्शन किया, वह आज भी स्मरणीय है।

सत्रह बार गोरी को परास्त कर अब पृथ्वीराज निश्चिन्त हो गया था कि वह फिर इधर आने की हिम्मत तक नही कर सकता। परन्तु संयोगिता को लेकर कन्नौज के शासक जयचन्द से उसका मन-मुटाव हो गया। घर की फूट बहुत बुरी होती है। जयचन्द की प्रेरणा से गोरी एक बार फिर पृथ्वीराज पर आक्रमण करता है और इस बार पृथ्वीराज की युद्ध में पराजय होती है, उसे कैद कर लिया जाता है।

पृथ्वीराज के कैद किये जाने की सूचना सेनापति द्वारा जब अच्छन कुमारी को मिलती है तो वह क्रोधित होकर उसे फटकारते हुए कहती है--"सेनापति! तुम कैसे सेनापति हो। तुम्हारे होते तुम्हारे स्वामी शत्रु द्वारा कैद कर लिये और तुम असहाय की भांति चुपचाप देखते रहे और अब क्या यह खुशखबरी सुनाने लौटे हो। युद्ध के मैदान से तुम परास्त होकर वापिस लौट आये। मैं देखती हूं किसकी मजाल है जो महाराज को कैद में रखे।"

इतना कह वह युद्ध के लिए तैयार हुई। हाथ में नंगी तलवार लिये, घोड़े पर सवार हो, तत्काल रण भूमि में पहुँचकर यवनों से संघर्ष किया। अपने पति को कैद से मुक्त कराने के प्रयास में स्वय युद्ध करती हुई वीरगति को प्राप्त हुई। उस स्वाभिमानी नारी के लिए पति को कैदी के रूप में देखना असह्य था। उसने हंसते-हसते अपने प्राण न्योछावर कर राजपूत नारी के वीरोचित गुण का परिचय दिया।

दुर्गावती

महोबा की राजकुमारी दुर्गावती गढ़मण्डल के अधिपति दलपतशाह की रानी थी। विवाह हुए अभी कुछ ही समय बीता था कि दलपतशाह इस संसार से चल बसे। रानी विधवा हो गयी। फिर भी वह अपने प्रिय पुत्र नारायण का पालन-पोषण बड़े धैर्य और साहस से करने लगी। उसने बड़ी बुद्धिमता और नीतिज्ञता से सारे राज्य का प्रबन्ध किया। उसके कुशल नेतृत्व में पन्द्रह वर्ष के अल्पकाल में गढ़मण्डल की गिनती भारत के वैभवशाली राज्यों में होने लगी।

रानी दुर्गावती का सुगठित, सुप्रबन्ध एवं गढ़मण्डल का ऐश्वर्य अकबर की नजर चढ़ा। उसने अपने सेनापति आसफखां को बड़ी सेना देकर उस पर आक्रमण किया। गढ़मण्डल की स्वामिनी विधवा रानी दुर्गावती इस आक्रमण से विचलित नहीं हुई। अपने वीर पुत्र नारायण के साथ मुगलों का जमकर मुकाबला किया। आसफखां रानी के पराक्रम से आश्चर्यचकित रह गया। मुगलों की विशाल सेना के सम्मुख दुर्गावती की सेना बहुत कम थी, फिर भी रानी ने प्रतिरोध जारी रखा।

उसने किले के भीतर अपनी सेना का मनोबल बनाये रखा। आसफखां कूटनीति से काम लेकर गढ़ के भीतर प्रवेश करने का प्रयास करने लगा पर स्वामीभक्त राजपूत सैनिकों ने, जिनकी रानी दुर्गावती में पूर्ण आस्था थी, उसके नापाक इरादों को सफल नहीं होने दिया। देश पर और अपनी आन पर मर मिटने वाले जन्मभूमि के रक्षकों को अपनी बहादुर रानी का बड़ा भरोसा था और रानी को भी अपने वीर सिपाहियों पर गर्व था।

आसफखां ने घूस देकर आखिर में अपना काम बना लिया और किले में प्रवेश किया। रानी दुर्गावती ने किले के द्वार खुलवा दिये और स्वयं हाथी पर सवार हो अपने विश्वस्त सिपाहियों के साथ मुगल सेना पर टूट पड़ी, साक्षात् रणचण्डी भवानी दुर्गा का रूप धारण कर लिया। उसका अठारह वर्षीय पुत्र नारायण भी शत्रुओं का दमन करने में पीछे नहीं रहा। घमासान युद्ध करते हुए अपनी मां की आंखों के सामने रण खेत रहा। रानी को पुत्र वियोग भी कर्तव्य पथ से नहीं डिगा सका। उसकी आंख में आकर तीर लगा, वह घायल हो गयी, फिर भी लड़ती रही। अन्त में जब उसने देखा कि विजय की कोई संभावना नहीं है तो दुश्मनों के हाथों पड़ने की बजाय अपनी

सुमति

गढमण्डल के सेनापति सुमेरसिंह की बहिन सुमति एक वीर नारी थी, जिसमें सतीत्व, पतिव्रत, देशप्रेम और मातृभूमि की रक्षा के भाव कूट-कूट कर भरे हुए थे। इस वीरांगना का विवाह बदनसिंह नामक एक जागीरदार के साथ होता है।

अकबर ने जब गढमण्डल पर आक्रमण करने को अपने सेनापति आसफ खां को भेजा और लम्बे समय तक संघर्ष के बाद भी उसे किला हस्तगत होने की उम्मीद नहीं रही तो कूटनीति से बदनसिंह को अपनी ओर फोडकर उसने दुर्ग का सारा भेद जान लिया। सुमति, जो बदनसिंह की पत्नी थी, उसे जब यह जानकारी होती है कि उसके पति ने देशद्रोही बनकर शत्रु को दुर्ग का सारा भेद बता दिया है तो वह बडी लज्जित हुई। मर्माहत पीड़ा और अतिशय वेदना से उसका मन खिन्न हो गया।

सुमति जैसी वीर नारी एक देशद्रोही की पत्नी कहलाये यह उसे कैसे सहन हो सकता था। उसे अपने पति से घृणा हो जाती है। इतना ही नही, वह ईश्वर से यह प्रार्थना करती है कि "हे भगवान्! मुझे ऐसा अवसर और ऐसी शक्ति प्रदान कर कि मैं इस कलंक को धो सकूं।"

रानी दुर्गावती ने मुगलों का सामना करते हुए युद्ध में वीरगति प्राप्त की और मुगल सेना का गढमण्डल पर अधिकार हुआ उस समय बदनसिंह अपनी पत्नी से मिलने चला। सुमति ने देखा उसका पति मुगलों की विजय को अपनी विजय समझ हर्ष और उल्लास के साथ उसकी ओर ही आ रहा है। बदनसिंह ने सुमति की ओर बढ़ते हुए उसे पुकारते हुए कहा—"सुमति! मैंने आज अपने अपमान का बदला ले लिया है, आज बहुत बडी सफलता प्राप्त हुई है।"

सुमति ने गरजकर कहा—"दूर हट! अधर्मी! पापी!! नीच!!! सुमति एक विश्वासघाती देशद्रोही कृतघ्न की पत्नी नही कहलाना चाहती।" सुमति ने तमंचा तानकर बदनसिंह की छाती पर दागते हुए कहा—"ले, अपने किये का यह पारितोषिक स्वीकार कर।" सुमति ने अपना सुहाग उजाड कर माथे पर लगे देशद्रोही की पत्नी का टीका मिटाकर अपने स्वाभिमान की रक्षा की।

कर्मदेवी

मेवाड़ के महाराणा समरसिंह की प्रथम रानी पृथा अपने पति के साथ सती हो गयी। दूसरी रानी कर्मदेवी (करुणावती) थी जो महाराणा समरसिंह के नाबालिग पुत्र कर्ण की संरक्षिका बनी। रानी कर्मदेवी बहुत ही वीर और साहसी नारी थी। पति की मृत्यु के उपरान्त पत्नी का जीवन कष्ट का पर्याय कहा जाता है फिर भी समय का तकाजा देखते हुए कर्मदेवी ने इस कष्टदायक जीवन को सहर्ष स्वीकार किया, क्योंकि इसी में उसके पुत्र कर्ण का हित था। पुत्र के हित हेतु मां से बढकर त्याग करने वाला संसार में दूसरा कोई नहीं होता है।

राजमाता कर्मदेवी मेवाड़ के सारे राज्य-कार्य को भली प्रकार संभाल रही थी। महाराणा समरसिंह की मृत्यु के पश्चात् मेवाड़ की स्थिति को कमजोर समझ कर राज्य-विस्तार के उद्देश्य से मोहम्मद गोरी के सेनापति कुतुबुद्दीन ने विशाल सेना के साथ आक्रमण कर दिया। मेवाड़ की राज्य गद्दी पर नाबालिग महाराणा कर्ण की छोटी अवस्था को देखकर सभी राजपूत वीर चिन्तित थे।

'मेवाड़ की रक्षा कैसे होगी' मेवाड़ के सिपाहियों में व्याप्त इस चिन्ता से सेनापति ने जब राजमाता कर्मदेवी को अवगत कराया तो वह सिंहनी की भांति गरज उठी—"वीर-प्रसविनी मेवाड़ भूमि के रक्षकों में यह आशंका कैसे पैदा हो गयी, सेनापतिजी! मातृ-भूमि की रक्षार्थ यहां के वीर हंसते-हंसते अपने प्राणों की बलि देने में गौरव समझते हैं, उसकी रक्षा के लिए चिन्तित होने की कोई आवश्यकता नहीं। कर्ण अभी छोटा है तो क्या हुआ, महाराणा साहब आज हमारे बीच में नहीं हैं तो क्या हुआ, उनकी वीर पत्नी, मैं, तो अभी जीवित हूं। आप जाइये और युद्ध की तैयारी कीजिए, मैं स्वयं शत्रु दल से लोहा लूंगी। कर्म देवी के होते मेवाड़ को कोई कमजोर न समझे।"

कर्मदेवी द्वारा सैन्य-संचालन से मेवाड़ी वीरों में अदम्य साहस और उत्साह भर गया। रणरंग में उन्मत्त राजपूत वीरों के सम्मुख आक्रमणकारी अधिक समय तक टिक नहीं सके। वीरांगना कर्म देवी ने मेवाड़ की रक्षा कर उसकी आन पर आंच नहीं आने दी।

जवाहर बाई

मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह का पुत्र विक्रमादित्य कायर, विलासी और अयोग्य था। मेवाड़ की बागडोर जब उसके हाथ में आयी तो उसके कुप्रबन्ध के कारण राज्य में अव्यवस्था फैल गयी। मेवाड़ की पड़ोसी रियासतें मालवा व गुजरात के पठान शासकों ने इस अराजकता का लाभ उठाकर चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। शक्तिहीन विक्रमादित्य मुकाबला करने में अपने आपको असमर्थ समझ कायर की भांति प्राण बचाकर भाग खड़ा हुआ।

शत्रु-सेना नगर में जब प्रवेश करने लगी तो राजपूत नारियों ने 'जौहर' करने की ठानी। जौहर की प्रथा से समय-समय पर राजपूत नारियां अपने सतीत्व की रक्षा करती आई हैं। प्रज्वलित अग्नि की प्रचण्ड लपटों में आत्मसमर्पण कर अपने आपको भस्म कर देना जौहर कहलाता है। इसी प्रथा का अनुसरण करने को तत्पर राजपूत नारियों को विक्रमादित्य की राजरानी जवाहर बाई ने ललकारते हुए कहा—"वीर क्षत्राणियों! जौहर करके हम केवल अपने सतीत्व की ही रक्षा कर सकेंगी, इससे देश की रक्षा नहीं हो सकती। हमें मरना तो है ही, इसलिए चुपचाप असहाय की भांति मरने से अच्छा है हम शत्रु को मार कर मरें। वैरियों का खून बहाकर रणगंगा में अवगाहन करें और अपने जीवन को ही नहीं, मृत्यु को भी सार्थक बनायें।

जवाहर बाई की इस घोषणा को सुनकर अगणित राजपूत वीरांगनाएँ युद्ध करने को उद्यत हुईं। चित्तौड़ के किले में एक ओर जौहर यज्ञ की प्रचण्ड ज्वालाएँ आसमान को छू रही थीं तो दूसरी ओर एक अद्भुत आग का दरिया बह रहा था। जवाहर बाई के नेतृत्व में घोड़ों पर सवार, हाथ में नंगी तलवार लिए, वीर-वधुओं का यह काफिला शत्रु दल पर कहर ढा रहा था। इस प्रकार सतीत्व के साथ स्वत्व और देश रक्षा के लिए जवाहर बाई के नेतृत्व में इन राजपूत रमणियों ने जो अद्भुत शौर्य प्रदर्शन किया, वह प्रशंसनीय और वंदनीय है।

ताजकुंवरी

कानपुर के समीप गंगा किनारे किसोरा नामक राज्य स्थित था। किसोरा के राजा सज्जनसिंह की राजकुमारी ताजकुंवरी और राजकुमार लक्ष्मणसिंह ये दोनों भाई बहन बड़े वीर थे और इन दोनों को शस्त्र विद्या की शिक्षा भली भांति दी गयी थी। ताजकुंवरी के शस्त्र-कौशल पर उसके पिता सज्जनसिंह को बड़ा गर्व था। मुसलमानों की सेना को एक बार परास्त कर छोटी अवस्था में ही उसने अपनी वीरता का परिचय दे दिया था।

ताजकुंवरी की वीरता और सुन्दरता की प्रशंसा दिल्ली के मुगल बादशाह ने सुन रखी थी। उसने किसोरा नरेश सज्जनसिंह को पत्र द्वारा सूचित किया कि—"अपनी पुत्री को चुपचाप हमारे हवाले कर दो वरना किसोरा राज्य का नामो निशान मिटा दिया जायेगा।" पत्र पाकर सज्जनसिंह का खून खोल उठा, उसने बादशाह को कड़ा प्रतिरोध करते हुए पत्र लिखा। बादशाह ने इसे अपमान समझ उसे सबक सीखाने किसोरा पर अपनी सेना भेजी। दिल्ली की विशाल वाहिनी के सामने उस छोटे-से राज्य की सेना परास्त हो गयी। सज्जनसिंह युद्ध में काम आये।

विजयी यवन सेना ने नगर में प्रवेश किया तो देखा एक बुर्ज पर खड़े किसोरा के दो सैनिक निरन्तर अपने बाणों से प्रहार कर रहे हैं। सेनापति ने उन्हें ध्यान से देखा तो राजकुमार और राजकुमारी दोनों भाई बहनों को पहचान लिया। सेनापति को आज्ञा दी कि "उन दोनों को जीवित पकड़ कर शीघ्र उपस्थित करो।" सेनापति ने आदेश देकर उनकी ओर अभी संकेत किया ही था कि ताजकुंवरी ने शर-संधान कर सेनापति को यमलोक पहुंचा दिया। सेनापति को गिरते देख मुसलमान सैनिक बहुत क्रोधित हुए और बुर्ज पर जबरदस्त धावा बोल दिया। शत्रु को समीप आते देख ताजकुंवरी ने अपने भाई से कहा—"विधर्मियों के हाथ पड़ने से पूर्व तुम मेरे शरीर की और धर्म की रक्षा करो।" लक्ष्मणसिंह की आंखों में आंसू छलक आये। ताजकुंवरी ने डांटते हुए कहा—"राजपूत होकर रोते हो? मेरे सतीत्व की रक्षा करने में तुम्हारे हाथ क्यों कांप रहे हैं? घबराओ मत! अब तो यही अन्तिम उपाय है।" भाई ने तत्काल तलवार खींच बहिन के शरीर के दो टुकड़े कर डाले और स्वयं लड़ता हुआ काम आया।

कमला देवी

कमला देवी वीरपुर गांव की एक वीर राजपूत कन्या थी। कमला देवी के पिता प्रायः युद्धों में व्यस्त रहा करते थे। अपनी माता से कमला देवी ने वीर राजपूत कन्या के सारे गुणों की शिक्षा पायी। अपनी मां से वीरों के आख्यान सुन-सुन कर वह इतनी निडर और साहसी हो गयी थी कि मृत्यु से उसे तनिक भी भय नहीं लगता था और अश्व-चालन और शस्त्र-विद्या में वह निपुण हो गयी थी। शत्रुओं से घिर कर एक दिन उसके पिता मारे गये। उस दिन से कमला ने यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि—"जब तक सारे दुश्मनों का, अपने पिता के हत्यारों का, सफाया नहीं कर दूंगी तब तक अपना विवाह नहीं रचाऊंगी।"

साहस और वीरता की प्रतिमूर्ति कमला देवी ने बहुत थोड़े समय में ही अपने पिता के हत्यारों का सफाया कर दिया। उसकी वीरता की धाक सर्वत्र फैल गयी थी। शक्ति-संचय और सुदृढ़ संगठन के लिए उसने जो सैनिक एकत्र कर रखे थे, उसमें से एक गुलाबसिंह नामक वीर राजपूत सैनिक को बहुत प्यार करती थी। मन से उसने गुलाबसिंह का पति रूप में वरण भी कर लिया था किन्तु गुलाबसिंह स्वयं इस बात से अनभिज्ञ था। कमला देवी निकट भविष्य में ही उससे विवाह करने का विचार रखती थी।

वीरपुर के पास के जंगल में चार आदमखोर शेरों का आतंक दिन-प्रतिदिन बढ़ने लगा और लोग उनसे अत्यधिक भयभीत हो गये। कमला देवी अपने चुने हुए कुछ सैनिकों के साथ जंगल में गयी और नियत स्थान पर प्रत्येक सैनिक को नियुक्त कर स्वयं आगे बढ़ी। थोड़ी दूर निकलने पर नर और मादा दो शेर अचानक उसके सामने आ गये। शेर उस पर आक्रमण को उद्यत होते और कमला देवी संभलती उससे पूर्व एक सैनिक तेजी से बढ़ता हुआ आया और शेरों से जूझने लगा। शेर मारे जा चुके थे पर वह वीर सैनिक भी घायल हो पृथ्वी पर गिर चुका था। उस पर शेर के दो बच्चे उसके वक्षस्थल को चीरने वाले ही थे कि कमला देवी ने तत्काल तलवार के वार से उनका काम तमाम कर दिया। कमला उसके पास पहुंची तो देखकर हैरान हो गयी, वह गुलाबसिंह था। गुलाबसिंह ने एक बार आंख खोली, कमला देवी को देखा और हिचकी के साथ उसके प्राण-पखेरू उड़ गये। चन्दन की चिता बनाकर कमला देवी अपने वरेण्य पति के साथ जल कर सती हुई।

कलावती

अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति ने दक्षिण भारत पर विजय प्राप्त करने से पूर्व रास्ते में एक छोटे-से राज्य के राजा कर्णसिंह को अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव भेजा। बिना युद्ध किये राजपूत पराजय स्वीकार कर ले, यह सम्भव नहीं, अतः कर्णसिंह यवनो से संघर्ष करने को तैयार हुआ। अन्तःपुर में अपनी रानी से जब वह विदा लेने गया तो उसकी रानी कलावती ने युद्ध में साथ चलने का निवेदन करते हुए कहा—"स्वामी! मैं आपकी जीवनसगिनी हूं, मुझे सदा संग रहने का अवसर प्रदान कीजिए। सिंहनी के आघात अपने वनराज से दुर्बल भले हों पर शृगालों के सहार हेतु तो पर्याप्त हैं।" कर्णसिंह ने अपनी वीर पत्नी की भावनाओं को समझते हुए उसे साथ चलने की अनुमति दे दी।

छोटी-सी सेना के साथ विशाल सेना का मुकाबला था। रानी कलावती स्वयं शस्त्र-संचालन में प्रवीण थी। अपने पति की पार्श्व रक्षा करती हुई शत्रु-संहार कर रही थी। इधर स्वाधीनता की रक्षा करने वाले वीर राजपूत मृत्यु का वरण करने को उत्सुक थे और उधर उनके सामने ये वेतन भोगी यवन सैनिक। घमासान युद्ध हो रहा था, इतने में एक आघात कर्णसिंह पर लगा जिससे वह बेहोश हो गया। कलावती ने दोनों हाथों से शस्त्र संचालन कर पति के आसपास स्थित सारे शत्रुओं का सफाया कर दिया। युद्ध-उत्साही राजपूतों के सामने शत्रु-सेना परास्त हुई।

विजय हासिल कर कलावती अपने घायल पति को लेकर वापिस लौटी। राजवैद्य ने परीक्षण कर बताया कि विषैले शस्त्र से आहत होने के कारण राजा कर्णसिंह बेहोश हुआ है, उसके विष को चूसने के सिवाय और कोई उपाय नही है।

विष चूसने वाले के जीवित बचने की संभावना कम थी क्योंकि शत्रु द्वारा प्रयुक्त जहर बहुत विषैला था। इससे पहले कि विष चूसने वाले की खोज की जाय, उसे ढूंढने का प्रयास किया जाय, रानी ने स्वयं उस मारक विष को चूस डाला। विष चूसने की विधि में कलावती निपुण नहीं थी फिर भी पति के प्राणों की रक्षार्थ उसने अविलम्ब यह कार्य किया। राजा कर्णसिंह की बेहोशी टूटी और उसने अपने नेत्र खोले तो उसे समीप ही पड़ी प्रेमप्रतिमा की मृत देह नजर आयी। अपने प्राणोत्सर्ग कर पति की रक्षा करने वाली कलावती का त्याग अविस्मरणीय है।

पद्मिनी

रावल समरसिंह के बाद उसका पुत्र रत्नसिंह चित्तौड़ की गद्दी पर बैठा। पद्मिनी रत्नसिंह की मुख्य रानी थी। पद्मिनी अपूर्व सुन्दर थी। उसकी सुन्दरता की ख्याति दूर दूर तक फैल चुकी थी। अलाउद्दीन पद्मिनी जैसी अनिंद्य सुन्दरी को प्राप्त करने के लिए लालायित हो उठा। चित्तौड़ पर आक्रमण कर दुर्ग को घेर लिया। लम्बे समय तक घेरा डाले रहने के बाद भी दुर्ग पर आधिपत्य जमाने में वह सफल नहीं हो सका। अलाउद्दीन खिलजी ने देखा राजपूत सैनिकों के अदम्य साहस और वीरता के आगे उसका बस नहीं चल सकता अतः उसने कूटनीति से काम लेने की सोची।

रत्नसिंह को उसने दूत के साथ यह संदेश कहलाया कि "एक बार यदि उसे रानी पद्मिनी को दिखा दें तो मैं घेरा समाप्त कर वापिस दिल्ली लौट जाऊंगा।" दूत का यह संदेश सुनकर रत्नसिंह आग-बबूला हो गया और अलाउद्दीन का मुंहतोड़ जवाब देने को उद्यत हुआ। रानी पद्मिनी ने इस अवसर पर दूरदर्शिता का परिचय देते हुए अपने पति रत्नसिंह को समझाया कि "मेरे कारण व्यर्थ ही मेवाड़ी वीरों का रक्त बहाना बुद्धिमानी नहीं है।" राजपूत नारी को अपनी ही नहीं पूरे चित्तौड़ राज्य की चिन्ता थी। वह नहीं चाहती थी कि उसके कारण चित्तौड़ तबाह हो जाय। उसने मध्य मार्ग निकाल कर कि अलाउद्दीन चाहे तो आइने में रानी का मुख देख सकता है, समस्या को सुलझाने का प्रयास किया।

अलाउद्दीन को तो दिल्ली लौटने का बहाना चाहिए था। घेरा डालने से विजय हासिल नहीं हुई और अब यदि वह घेरा उठाता तो उसकी एक तरह से पराजय ही होती और वह नहीं चाहता था कि उसके सैनिकों में यह बात फैले अतः आइने में मुख देखने का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। चित्तौड़ के राजमहल में अलाउद्दीन का स्वागत-सत्कार अतिथि की तरह किया गया और दर्पण में पद्मिनी के मुखारविन्द का दर्शन कर आश्चर्य चकित रह गया। कुटिल हृदय ने मन-ही-मन चाल चली और जब रत्नसिंह किले से बाहर उसे पहुंचाने गया तो अलाउद्दीन ने अपने सैनिकों को संकेत किया और तुरन्त रत्नसिंह को गिरफ्तार कर लिया गया।

रत्नसिंह को कैद करने के पश्चात् अलाउद्दीन ने प्रस्ताव रखा कि यदि पद्मिनी को उसे सुपुर्द कर दें तो रत्नसिंह को कैद-मुक्त किया जा सकता है। पद्मिनी ने इस समय भी कूट नीति का प्रत्युत्तर कूटनीति से ही देना समीचीन समझा। उसने अलाउद्दीन के पास यह संदेश भेजा कि—"मैं मेवाड़ की महारानी अपनी सात सौ सहचरियों के साथ आपके सम्मुख उपस्थित होने से पूर्व अपने पति के दर्शन करना चाहती हूं अतः यह शर्त स्वीकार हो तो मुझे सूचित करें। पद्मिनी का ऐसा सदेश पाकर अलाउद्दीन दीवाना हो गया, जैसे पद्मिनी बस उसे मिल ही गयी, उसने तुरन्त रानी को कहलवाया "तुम्हारी हर शर्त मुझे स्वीकार्य है।" पद्मिनी को प्राप्त करने के लिए अलाउद्दीन बेताब हो रहा था।

इधर पद्मिनी ने सात सौ डोलियां तैयार करवाई जिसमें दो अन्दर और दो बाहर राजपूत सैनिक बिठाये गये। सात सौ पालकियों में बयालीस सौ वीर राजपूत सैनिकों के साथ पद्मिनी अपने पति से मिलने चली। उसकी डोली के दोनों ओर वीरवर गोरा और बादल घोड़ों पर सवार हो कालजयी प्रहरी के समान चल रहे थे। यवन सेना और अलाउद्दीन उस काफिले को देख रहे थे। सारी पालकियें रुकीं, पद्मिनी की पालकी में एक लोहार बैठा था अतः पद्मिनी का रत्नसिंह से मिलने का स्वांग रच कर उसे बंधन मुक्त कर कैद से छुड़ाया और शेष डोलियों से राजपूत वीर सैनिक वेश मे निकल कर यवन सेना पर टूट पड़े। रत्नसिंह गोरा बादल की चतुराई से सकुशल दुर्ग में पहुंच गये। अलाउद्दीन को परास्त होना पड़ा।

अपनी अपमान जनक पराजय का बदला लेने अलाउद्दीन कुछ समय उपरान्त ही फिर चित्तौड़ पर आक्रमण करता है। राजपूत केसरिया वाना पहिन कर साका करते है। रत्नसिंह युद्ध के मैदान में वीरगति को प्राप्त हुये तब पद्मिनी ने राजपूत नारियों की कुल-परम्परा, मर्यादा और अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर यज्ञ किया। सहस्रों नारियों के साथ पद्मिनी अग्नि कुण्ड में जलकर भस्म हो गयी। अपूर्व सुन्दरी पद्मिनी, जिसे दिल्ली का बादशाह पाने को लालायित था, अपने कुलगौरव की रक्षार्थ जलकर स्वाहा हो गयी, जिसकी कीर्ति-गाथा आज भी अमर है और सदियों तक आने वाली पीढ़ी को गौरवपूर्ण आत्म बलिदान की प्रेरणा करती रहेगी।

जसवंत दे हाडी

जसवंत दे बून्दी के राव हाडा की पुत्री थी । हाडा वंश की यह राजकुमारी अत्यन्त वीर और साहसी थी । जोधपुर के महाराजा जसवंतसिंह (प्रथम) के साथ इसका विवाह सम्पन्न हुआ । महाराजा जसवंतसिंह बड़े वीर और पराक्रमी थे । मुगल दरबार में उन्हें महत्व-पूर्ण मनसब मिला हुआ था । शाहजहां के उत्तराधिकार के युद्ध में, जो दारा व औरंगजेब के मध्य लड़ा गया, उसमें महाराजा जसवंत-सिंह ने दारा का समर्थन किया । औरंगजेब और मुराद सम्मिलित रूप से मिलकर दारा का विरोध कर रहे थे और औरंगजेब खुद बादशाह बनना चाहता था इसलिए धरमट का इतिहास प्रसिद्ध युद्ध हुआ ।

धरमट के युद्ध में दारा समर्थित सेना की पराजय होती है और औरंगजेब विजयी होता है । जसवन्तसिंह के कई वीर सामन्त इस युद्ध में काम आये और स्वयं जसवंतसिंह को भी घायलावस्था में युद्ध के मैदान से बाहर निकाल कर आसकरण, महेशदास आदि ने सुर-क्षित स्थान पर पहुंचाया । औरंगजेब दिल्ली का बादशाह बनता है । उसने अपने पिता शाहजहां को कैद में डाल दिया और दारा की हत्या कर दी । जसवंतसिंह, ऐसी स्थिति में, मारवाड़ अपने वतन जागीर में लौट आये ।

रानी जसवंत दे, जो जसवंतसिंह की पत्नी थी, को जब ज्ञात हुआ कि महाराजा युद्ध में विफल होकर लौट आये हैं तो उस क्षत्रिय नारी का वीरत्व जाग उठा । नागिन की भांति फुफकारते हुए उसने कहा—"महाराजा का रूप धरे यह कोई छलिया है । राजपूत युद्ध में पराजित होकर जीवित नहीं लौट सकता । किलेदार ! किले का द्वार बन्द कर दो और ध्यान रहे, मेरी आज्ञा के बिना यह द्वार खुले नहीं ।" रानी की इस वीरोचित भावना का जब महाराजा को पता चला तो उन्हें इस वीर नारी पर गर्व हुआ और अपने प्रधान सामन्त को भेजकर जिन परिस्थितियों में उन्हें लौटना पड़ा, उसकी जान-कारी करवायी तब कहीं जाकर गढ़ के द्वार खुले । अपने पति द्वारा क्षत्रिय धर्म का पालन नहीं करने पर एक क्षत्रिय नारी के स्वाभिमान को कितनी चोट पहुंचती है, जसवंव दे इसका एक उदाहरण है । उसने अपनी गौरवमयी परम्परा का निर्वाह न करने पर प्राणेश्वर को भी नहीं बख्शा । ऐसी वीर राजपूत नारियों के बल पर ही क्षत्रियों का कुल, गौरव, प्रतिष्ठा और मान-सम्मान अक्षुण्ण रहा ।

मलयबाई

महाराष्ट्र में बल्लारी नामक प्रसिद्ध दुर्ग पर शिवाजी ने जब अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहा, उस समय वहां की राजमहिषी मलयबाई थी। बल्लारी के राजा का देहान्त होने के पश्चात् राज्य का भार मलयबाई के कन्धों पर आ पड़ा। मलयबाई ने राज्य का सुप्रबन्ध किया और उसकी धर्मपरायणता व शान्तिप्रियता की ख्याति दूर तक फैल चुकी थी। शिवाजी के विजय अभियान को वह ठीक समझती थी कि इससे एकछत्र हिन्दू राज्य की स्थापना में मदद मिलेगी और संगठित होकर ही हिन्दू पुनः विदेशियों से राजनीतिक सत्ता छीनने में समर्थ हो सकते हैं।

ऐसा विचार रखने वाली मलयबाई को फिर भी यह स्वीकार नहीं था कि बिना युद्ध किये अपनी पराजय मान ले। जिस शिवाजी ने दिल्ली के तख्त को हिलाकर रख दिया था उसी के सामने उस वीर क्षत्राणी ने युद्ध करने की ठानी। मलयबाई अपने दृढ़ निश्चय पर अटल थी और संग्राम के बिना आत्मसमर्पण उसे स्वीकार नहीं था। मराठों की विशाल सेना का उस वीर नारी ने सत्ताईस दिन तक डटकर मुकाबला किया तब कहीं जाकर मराठी सेना दुर्ग पर अधिकार प्राप्त करने में सफल हो सकी।

शिवाजी ने बल्लारी के दुर्ग में दरबार किया और उसमें उस वीर नारी को भी दरबार में लाकर एक आसन पर सम्मानपूर्वक बैठाया गया और शिवाजी ने मलयबाई के विचार जानने चाहे। रानी मलयबाई ने दृढ़ता से कहा—"मैं इस छोटे से दुर्ग की रक्षिका हूं और आप (शिवाजी) समग्र देश के रक्षक हैं, राजा हैं। मैंने जो उचित था, वही किया। अपनी शक्ति के अनुसार राजधर्म का पालन कर अपना कर्तव्य पूरा करने का मुझे सन्तोष है। मुझे किसी प्रकार के अनुग्रह की आवश्यकता नहीं, अब आप चाहे जो दण्ड दें।"

शिवाजी मलयबाई की वीरता से अभिभूत हो चुके थे। उन्होंने भरे दरबार में मलयबाई की प्रशंसा करते हुए कहा—"मां! आप आदर्श क्षत्राणी हैं। यह दुर्ग आपका है। किसमें इतनी शक्ति है कि वह आपसे यह दुर्ग छीन ले। आप निश्चिन्त होकर अपने राज्य का संचालन करें। आप जैसी वीर माताओं के आशीर्वाद से ही हम अपनी मातृ-भूमि की रक्षा करने में सफल हो सकते हैं।"

कर्मवती

बूंदी के हाडा राव नर्वद की पुत्री कर्मवती का विवाह मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह के साथ सम्पन्न हुआ था। वीरत्व और तेजस्व की प्रतिमूर्ति कर्मवती पर महाराणा सांगा का विशेष प्रेम था। महाराणा के स्वर्गवास के पश्चात् राजकुमार रत्नसिंह और विक्रमादित्य में संघर्ष छिड़ा। कालान्तर में बूंदी के सूरजमल हाडा के हाथों रत्नसिंह मारा गया व विक्रमादित्य मेवाड़ की राजगद्दी का अधिकारी बना।

विक्रमादित्य अयोग्य और निकम्मा था। उसने अपने व्यवहार से सारे सामन्तों व जागीरदारों को असंतुष्ट कर डाला। राज्य में अव्यवस्था फैल गई। इस स्थिति का लाभ उठाकर गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। राजमाता कर्मवती ने तत्कालीन मुगल बादशाह हुमायू को राखी भेजकर उस की सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया किन्तु हुमायू से उसे समय पर सहायता प्राप्त नहीं हुई।

कर्मवती के सामने संकट की घड़ी थी। उसने विक्रमादित्य के बर्ताव के कारण रुष्ट हुए सभी सरदारों को जन्म-भूमि की रक्षा के लिये कटिबद्ध करने की आवश्यकता समझी और इस आशय के उन्हें पत्र लिखे—"मेवाड़ के वीर सामन्तों! अब तक यह चित्तौड़ का दुर्ग राजपूती आन और मान का प्रतीक रहा है। अपने प्राणों की बलि देकर जिस दुर्ग की आपके पुरखों ने रक्षा की है, उस शौर्य और वीरत्व के प्रतीक चित्तौड़ पर आज संकट के काले बादल मंडरा रहे हैं। यह किला सिर्फ विक्रमादित्य या मेरा ही नहीं आप सबका है और मैं इसे तुम्हें सौंपती हूं। अब तुम इसकी रक्षा करो। जो राज्य वंश-परम्परा से तुम्हारा है, वह यदि शत्रु के हाथ में चला गया तो बड़ी अपकीर्ति होगी। राजपूत को अपकीर्ति से मृत्यु अधिक प्रिय होती है और इसी कारण उसके शरीर में रक्त की एक भी बूंद शेष रहते वह शत्रु से मुकाबला करता है, उसकी दासता स्वीकार नहीं करता। राजपूत ने सदा आत्म समर्पण से मृत्यु का वरण श्रेष्ठ समझा है। आप केसरिया बाना पहन युद्ध-भूमि में कूद पड़ो। हम अग्निस्नान कर आपका अनुगमन करने को तत्पर हैं।

रानी के इस आह्वान और वीरतापूर्ण उद्बोधन से मेवाड़ के सारे राजपूतों में देशप्रेम की लहर उमड़ पड़ी और अपनी जन्म-भूमि की रक्षा के लिये मरने का संकल्प कर कर्मवती के पास उपस्थित हो गये। देवलिये (प्रतापगढ़) के रावत बाघसिंह के नेतृत्व में देसूरी का सोलंकी भैरवदास, देलवाड़े का राजराणा झाला सज्जा, सादड़ी का राजराणा झाला सिंहा, रावत दूदा, रावत सत्ता, सिसोदिया कम्मा, सोनगरा माला, रावत देवीदास, रावत बाघ, सिसोदिया रावत नगा, रावत कर्म्मा, सरदारगढ़ का डोडिया भाण इत्यादि राजपूत सरदार अपनी सेना सहित इस युद्ध में काम आये। यह युद्ध इतिहास में "चित्तौड़ का दूसरा शाका" नाम से जाना जाता है।

वीर क्षत्रियों द्वारा शाका करने पर उनकी क्षत्राणियां कब पीछे रहने वाली थीं। राजमाता कर्मवती के साथ बहुत बड़ी संख्या में राजपूत नारियों ने जौहर किया। अपने सतीत्व की रक्षार्थ क्षत्राणियों द्वारा अग्नि में प्राणाहुति देने की अद्भुत परम्परा रही है। वीर रानी कर्मवती के एक निश्चय ने मेवाड़ के इतिहास का रुख पलट दिया। राजपूत नारियों के अद्भुत बलिदानों और ऐसे दृढ़ निश्चयों के कारण ही हमारा इतिहास इतना गौरवशाली बन पाया।

बहादुरशाह विजय के उन्माद में किले के भीतर प्रवेश करता है पर वहां उसे जलती हुई चिताओं की राख के अतिरिक्त कुछ भी हासिल नहीं हुआ। हुमायू अपनी बहिन कर्मवती की रक्षा के लिए बहादुरशाह पर आक्रमण कर उसे परास्त करता है पर तब तक बहुत देर हो चुकी थी। अपनी धर्म बहिन की समय पर रक्षा न करने का दुख उसे जीवन भर सालता रहा। राजपूत नारियों की जौहर परम्परा अद्वितीय कही जायेगी क्योंकि ऐसा अप्रतिम उदाहरण अन्य किसी देश के इतिहास में देखने को नहीं मिलता।

मीरां

मीरां मेड़ता के राव दूदा के पुत्र रतनसिंह की पुत्री थी। बचपन में ही माता का देहान्त हो जाने के कारण मीरां का लालन-पालन राव दूदा के पास मेड़ता में ही हुआ। राठौड़ों की मेड़तिया शाखा में जन्म लेने के कारण मीरां मेड़तणी के नाम से प्रसिद्ध हुयी। अपने चाचा वीरमदेव के पुत्र जयमल के साथ उसका बचपन बीता। इन दोनों में प्रारम्भ से ही ईश्वर-आराधना और भक्ति के संस्कार पैदा हो गये थे, अतः जयमल प्रसिद्ध भक्त हुआ और मीरां भक्तिमति।

मीरां का विवाह मेवाड़ के महाराणा सांगा के पुत्र राजकुमार भोज के साथ हुआ था। वह मेवाड़ की राजरानी बनी, फिर भी अपने आराध्य कृष्ण के प्रति उसकी भक्ति अटूट बनी रही। कृष्ण को ही उसने पति मान रखा था और रात दिन उसी मोहन मुरली वाले को रिझाने में लगी रहती थी। भोज की मृत्यु के पश्चात् मीरां पर उसके ससुराल वालों ने बहुत जुल्म ढाये। तरह-तरह से दुख देकर उसे परेशान किया गया। उसकी सतसंग-प्रियता और कृष्ण-भक्ति का मखौल उड़ाया गया। इतना ही नहीं, उस पर कुल-कलंकिनी इत्यादि आक्षेप लगाये और वे असह्य हो गये तो एक दिन मीरां ने राजमहलों का परित्याग कर दिया। उसके भजन-कीर्तन से यदि मेवाड़ के राजवंश की अपकीर्ति होती है तो उसने अपने आपको उससे अलग कर लिया और श्याम के रंग में रंगी वह मीरां लोक-लाज, कुल-मर्यादा सबका परित्याग कर अपने गिरधर गोपाल के चरणों में समर्पित हो गयी।

मीरां, राजपूत-नारी के साहस का ज्वलयमान उदाहरण है। जिस युग में राजपूत नारी पर्दे की पुतली के समान थी, उसने पांव में घुंघरु बांध, मगन हो, जगह-जगह घूम-घूम कर गोविंद के गुण गाये। समाज के बंधनों को एक ही झटके में तोड़ने वाली उस साहसी महिला की उस समय बड़ी बदनामी हुई, पर मीरां ने तो "आ बदनामी लागे मीठी" कह के उसे भी सहजता से स्वीकार कर लिया। मध्य युग की राजपूत नारी का आदर्श—"सतीत्व की रक्षा हेतु जौहर करना या सती होना" सिर्फ रह गया था। उसने भिन्न

दिशा में सोचने को उसे मजबूर किया और उसने भक्ति के अनुसरण से अपने जीवन के चरम लक्ष्य तक पहुंचने का नवीन मार्ग सुझाया।

मीरां ने जो मार्ग चुना वह सहज नहीं था, उसे कठिन अग्नि-परीक्षाएँ देनी पड़ी। मेवाड़ के महाराणा विक्रमादित्य, जो मीरां का देवर था, उसने मीरां को भिन्न-भिन्न तरीके से कष्ट दिया, यहां तक कि वह नराधम मां समान अपनी भाभी के प्राणों का ग्राहक बन गया। मीरां के प्राणों को हरने के लिए विष का प्याला और काला नाग भी भेजा गया पर उस कालजयी पर कुछ प्रभाव नहीं हुआ। मेवाड़ से प्रस्थान करते समय मीरां को उसने रोकने का प्रयास किया पर इसमें भी वह सफल नहीं हुआ। भक्ति के विरल पथ पर अग्रसर होने वाली मीरां कब रुक सकती थी। उसे संसार से विरक्ति हो गयी थी और कृष्णमयी मीरां का जब घर, परिवार, सारा जग दुश्मन हो गया तब उसे, अपने सांवरिये का ही सहारा था, अपने प्रिय गोपाल का—"मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।"

तीर्थाटन को निकली मीरां विभिन्न स्थानों पर घूमती हुई ब्रज-भूमि के दर्शन करने गयी, जहां श्रीकृष्ण ने अपनी अद्भुत लीलाएँ रचीं। ब्रज भूमि में सत्संग करते कई दिन बिताये। एक दिन मीरां प्रसिद्ध भक्त जीवगोस्वामी से मिलने गई तो उन्होने मिलने से यह कहकर इन्कार कर दिया कि "मैं स्त्रियों से नहीं मिलता।" मीरां ने कहलवाया—"मैं तो ब्रज में एक ही पुरुष कृष्ण को जानती हूँ, यह दूसरा पुरुष कहां से आ गया !" इतना सुनते ही जीवगोस्वामी स्वयं मीरां से मिलने नंगे पांव दौड़े। ब्रजधाम से मीरां द्वारका आई और वहां रणछोड़ के सम्मुख नृत्य-कीर्तन व भजन में मग्न रही। एक दिन इसी प्रकार नृत्य करते करते अपने आराध्य की मूर्ति में समा गई। मूर्ति में मीरां का चीर बगल में लटका हुआ है और यह मूर्ति गुजरात के प्रसिद्ध धाम डाकोर जी में आजकल विद्यमान है।

मीरां के पदों की सरसता, सहजता और अन्तरनिहित वेदना सर्वविदित है। मीरां द्वारा रचित एक एक पंक्ति उसकी भक्ति-भावना से ओतप्रोत है और सहृदय पाठक को तरंगित किये बिना नहीं रहती। उसके पद आज हिन्दुस्तान भर में गाये जाते है। मद-मंदा-किनी मीरां की भक्तिमयी भावधारा से केवल मारवाड़ और मेवाड़ ही नहीं, पूरा भारत देश आप्लावित हो धन्य हो गया।

चारुमती

चारुमती किशनगढ़ के राजा रूपसिंह की पुत्री थी। रूपसिंह की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र मानसिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ। चारुमती बहुत सुन्दर थी और उसका यह रूप-सौन्दर्य तथा लावण्य ही उसके लिए परेशानी का एक कारण बन गया। चारुमती की सुन्दरता की प्रशंसा सुनकर औरंगजेब उससे शादी करने को इच्छुक हुआ। उसने अपने मनसबदार मानसिंह के सम्मुख, जो किशनगढ़ का राजा और चारुमती का भाई था, शादी का प्रस्ताव रखा। मानसिंह को विवश होकर उसका प्रस्ताव स्वीकार करना पड़ा।

चारुमती जो अपने पिता की भांति परम वैष्णव थी, गीता आदि धार्मिक ग्रन्थों का नित्य पूजन-पठन करती थी, वह औरंगजेब जैसे कूट अत्याचारी, विधर्मी से विवाह नही करना चाहती थी। चारुमती ने अपनी माता और भाई मानसिंह को अपना मंतव्य स्पष्ट रूप से बता दिया था और यदि जबरन उससे शादी करने की कोशिश की तो वह प्राण त्याग देगी। इधर अपनी बहिन का दृढ़ निश्चय और उधर मुगल बादशाह औरंगजेब का खौफ! राजा मानसिंह दुविधा में फंस गया। उसे कुछ उपाय नही सूझ रहा था कि क्या किया जाय।

चारुमती दृढ़ निश्चय वाली, बड़ी वीर और साहसी राजपूत नारी थी। उसने संकट की स्थिति में भी धैर्य नहीं खोया और उसे अपने प्राण की रक्षा का एक उपाय सूझा। अपनी और अपने धर्म की रक्षार्थ उसने महाराणा राजसिंह को पत्र लिखा जिसमें यह निवेदन किया गया कि—"मेरे कुटुम्बी व परिवार जनों के होते हुए भी मैं आज एक अनाथिनी हूं। राज्य-सुख के अभिलाषी मेरे परिवार के लोग विधर्मी औरंगजेब से, मेरी इच्छा के विपरीत, जबरन विवाह करना चाहते हैं। मैंने निश्चय किया है कि दिल्ली की अधीश्वरी बनने की बजाय मैं आपके चरणों की दासी बनना चाहती हूं, इसी में मेरा धर्म, कुल-परम्परा और स्वाभिमान सुरक्षित है। आप शरणागत-वत्सल और समर्थ शासक हैं, इसलिए यह अनुनय कर रही हूं कि मुगलों के हाथ पड़ने से मुझे बचाइये और एक स्वाभिमानी राजपूत बाला के स्वाभिमान की रक्षा कीजिए। चारुमती तो आपकी हो चुकी है, अब आप अपनी चारुमती की लाज बचाइये।" चारुमती का पत्र पाते ही राजसिंह उसकी सहायता को उपस्थित होते हैं। इस प्रकार महाराणा राजसिंह की रानी चारुमती अपने स्वाभिमान की रक्षा करने में सफल हो जाती है।

हाडी रानी

सलूम्बर के रावत रत्नसिंह चूंडावत मेवाड़ के महाराणा राजसिंह के प्रमुख उमराव थे। वीरवर सलूम्बर रावत अपना विवाह करके लौटे ही थे कि राजकुमारी चारुमती का पत्र महाराणा राजसिंह को प्राप्त हुआ जिसमें औरंगजेब के चंगुल से बचाने तथा एक राजपूत बाला के मान की रक्षा करने का निवेदन था। चारुमती ने महाराणा राजसिंह को संदेश भेजकर शीघ्र विवाह करने का जो आग्रह किया उसे राजसिंह ने अपने मंत्रियों से मंत्रणा करने के बाद स्वीकार कर लिया। चारमती से विवाह करने हेतु प्रस्थान की तैयारियां होने लगी।

रावत रत्नसिंह ने अपनी नव वधू हाडी रानी को चारमती के विनय का वर्णन सुनाया तथा कल प्रातः ही महाराणा उससे विवाह करने हेतु प्रस्थान करेंगे, इसकी सूचना दी। सारा वृत्तान्त सुनकर हाडी रानी प्रसन्न हुई और उसे इस बात की खुशी हुई कि चारुमती की रक्षा करने को महाराणा राजसिंह तत्पर हुए। अपने पति को निवेदन करते हुए उसने कहा—"आपके लिए भी यह सुनहरा अवसर है। अपने स्वामी के साथ आप एक राजपूत बाला को कठिन परिस्थिति से उबारने को जा रहे हैं। नारी की रक्षा करना क्षत्रिय का पुनीत कर्तव्य है और आप इसे भलीभांति निभायें, यही कामना करती हूं।"

सलूम्बर का रावत रत्नसिंह वीर और साहसी राजपूत था किन्तु वह अपनी रानी के स्नेह और प्रेम में खोया हुआ था। अपनी नववधू के सौन्दर्य को खुली आंख से अभी निरख भी नहीं पाया था, मधुर सपनों की कल्पना के किसलय विकसित होने के पहले ही उसे मुरझाते हुए प्रतीत हुए। युद्ध के लिए वीर वेश धारण कर लिया, फिर भी मन में हाडी रानी बसी थी, आंख उसी को निहारने हेतु एकटक झरोखे पर टिकी थी। रानी के विदा करने के पश्चात् भी जब वह उससे कोई निशानी देने की मांग करता है तब हाडी रानी समझ जाती है कि पति का मन मुझ में अटक गया है और यही स्थिति रही तो वे अपने कर्तव्य का भली प्रकार निर्वाह नहीं कर सकेंगे। अतः तत्काल उसने प्रेम के चिह्न स्वरूप अपने हाथ से अपना सिर काटकर दासी के हाथ भिजवाया। पति से पहले अपने प्राणों की बलि देने वाली ऐसी राजपूत नारियों के अद्भुत शौर्य और त्याग से ही क्षत्रियों का वीरत्व कायम रह सका।

उमादे

उमादे जैसलमेर के रावल लूणकर्ण की पुत्री थी। उमादे सुशील और गुणवती थी। रावल लूणकर्ण ने मारवाड़ के तत्कालीन शासक मालदेव की शक्ति-सम्पन्नता से भयभीत हो अपनी पुत्री का उससे विवाह कर सम्बन्ध सामान्य बनाने की सोची। उमादे की सगाई का नारियल मालदेव को भेजा। मालदेव ने इसे स्वीकार कर लिया और ससैन्य अपने प्रमुख सामन्तों के साथ विवाह के लिए जैसलमेर पहुंचा। बारातियों की नगर के बाहर समुचित व्यवस्था की गयी। लूणकर्ण मालदेव को विवाह के भुलावे मे रखकर उसकी हत्या करने का इच्छुक था और इसके लिए वह अपने विश्वस्त लोगों के साथ मंत्रणा कर रहा था कि मालदेव की हत्या विवाह के पूर्व की जाय या विवाह के पश्चात्। किसी तरह इसकी सूचना उमादे को मिल जाती है। उसे अपने पिता के इस कुत्सित विचार से बड़ी घृणा उत्पन्न होती है। पिता द्वारा अपनी पुत्री के मांगलिक विवाहोत्सव पर ऐसी योजना उसे भली नहीं लगी पर राज्य-लिप्सा, सत्ता की भूख और राजनैतिक महत्वाकांक्षा व्यक्ति को विवेकशून्य कर अंधा बना देती है। अतः उसने अपने पिता को समझाना व्यर्थ समझा और राघवदेव नामक राजपुरोहित के माध्यम से मालदेव को इसकी सूचना देकर सतर्क कर दिया।

उमादे से प्राप्त संकेत से मालदेव सतर्क हो गया और उसने पूरी सावधानी बरती, जिससे रावल लूणकर्ण को चूक (हत्या) करने का मौका नहीं मिला। विवाहोत्सव निर्विघ्न समाप्त हो गया परन्तु उमादे भटियाणी के किस्मत में पति का सुख नहीं लिखा था। मालदेव उमादे की दासी भारमली के नृत्य-गान और मनोविनोद में रीझे रहे। प्रथम रात्रि में अपनी नववधू उमा के पास नहीं पहुंचे तो उमा को कामुक और चरित्रहीन पति पर बहुत क्रोध आया और उसने निश्चय कर लिया कि ऐसे पति से तो ब्रह्मचारिणी रहकर जीवन बिताना अच्छा। हुआ भी यही, उमा फिर कभी मालदेव से नहीं मिली। राव मालदेव ने उससे माफी मांगी, फिर भी वह मानिनी नहीं मानी। बारहठ आसा उसे लेने गया पर उसके यह कहने पर कि—मान रखे तो पीव तज, पीव रखे तज मान।

दो दो गयन्द न बन्धहीं, कबहुक एके ठांण।।

उसने अपने स्वाभिमान की रक्षा पर ही दृढ़ रहना उचित समझा। इतिहास में यही उमादे भटियाणी 'रूठीराणी' के नाम से जानी जाती है।

कृष्णाकुमारी

मेवाड़ के महाराणा भीमसिंह की पुत्री कृष्णाकुमारी बहुत रूपवती थी। महाराणा ने अपनी राजकुमारी की सगाई जोधपुर के महाराजा भीमसिंह के साथ की किन्तु शादी के पूर्व ही उनकी मृत्यु हो गयी अतः जयपुर के राजा जगतसिंह के साथ उसका सम्बन्ध तय किया गया। पोकरण ठाकुर सवाईसिंह के उकसाने पर जोधपुर के महाराजा मानसिंह ने (जो महाराजा भीमसिंह की मृत्यु के पश्चात् उत्तराधिकारी बने) मेवाड़ को यह संदेश भेजा कि—"कृष्णा कुमारी का विवाह जोधपुर के भूतपूर्व महाराजा के साथ होना तय हुआ था, अतः उसका विवाह मेरे साथ होना चाहिए, जयपुर के महाराजा जगतसिंह के साथ विवाह करके आप हमारा अपमान करना चाहते हो, इसे हम कभी बर्दाश्त नहीं करेंगे।"

महाराणा दुविधा में फंस गये। जोधपुर या जयपुर किसी एक महाराजा से विवाह करने पर दूसरा नाराज हुये बिना रह नहीं सकता था। मेवाड़ की उस समय ऐसी सुदृढ़ स्थिति नहीं थी कि वह युद्ध में उसका मुकाबला कर सके। जोधपुर और जयपुर दोनों के मध्य संघर्ष छिड़ गया और दोनों ही कृष्णाकुमारी के साथ विवाह के लिए अपने को दावेदार बता रहे थे। मेवाड़ पर संकट के बादल घिर आये। ऐसी स्थिति में मीरखां नामक पठान ने मेवाड़ के महाराणा को यह सुझाव दिया कि—"सारा उपद्रव कृष्णाकुमारी के कारण पैदा हुआ है अतः इस झगड़े की जड़ का ही सफाया करो।"

लाचार होकर महाराणा को उसका सुझाव स्वीकार करना पड़ा। महाराणा ने तलवार से कृष्णाकुमारी की हत्या करने जवानदास पासवानिये को भेजा पर रूपवती राजकुमारी की हत्या करने का साहस नहीं कर सका। कृष्णाकुमारी की मां अपनी पुत्री के दुख से कातर व विह्वल हो रही थी, उसे राजकुमारी ने कहा—"मां! तुम क्यों इस तरह विलाप कर रही हो। मैं तेरी पुत्री हूं, मौत से कभी नहीं डरती। राजपूत बालाओं का जन्म तो आत्म बलिदान के लिए ही होता है। तुम्हें तो गर्व होना चाहिए कि तुम्हारी पुत्री को देश की रक्षा के लिए आत्मोत्सर्ग का अवसर मिला। कृष्णा के प्राणों से मेवाड़ का मान बड़ा है, मां।" इतना कहकर उस रूपवती षोडसी वीर राजपूत बाला ने विष पान कर मेवाड़ की रक्षा के लिए आत्मविसर्जन किया।

पन्ना धाय

पन्ना धाय खीची जाति की वीर राजपूत कन्या थी। मेवाड़ के महाराणा संग्रामसिंह की मृत्यु के पश्चात् चित्तौड़ की राजगद्दी पर विक्रमादित्य बैठा परन्तु थोड़े समय पश्चात् ही उस अयोग्य और निकम्मे महाराणा को हटाकर राणा सांगा के छोटे पुत्र उदयसिंह को मेवाड़ का शासक नियुक्त किया। उदयसिंह की अवस्था अभी छः वर्ष की ही थी और उसकी माता का देहान्त हो चुका था। बालक उदयसिंह की परवरिश का भार पन्ना धाय पर था। मेवाड़ के राजघराने में आन्तरिक कलह के कारण बड़ी नाजुक स्थिति थी और ऐसी संकटपूर्ण घड़ी में किसी प्रकार के अनिष्ट हो जाने की सम्भावना थी। मेवाड़ के राजकुल का दीप उदयसिंह पन्ना की देख-रेख में रखा गया क्योंकि वह स्वामीभक्त, वीर और अदम्य साहसी नारी थी।

अभी कुछ ही दिन बीते थे, उदयसिंह को राणा की पदवी प्राप्त हुए कि पन्ना की परीक्षा की घड़ी आ गई। बणवीर नामक एक दासी पुत्र ने चित्तौड़ की राज्य गद्दी हथियाने का प्रयास किया। उसकी गतिविधि की खबर पन्ना को लगी तो वह बड़ी चिन्तित हो गयी। बणवीर ने क्रूरता और नृशंसता से राजकुल के लोगों की हत्या की। अब उदयसिंह को समाप्त कर निरापद राज्य करने के लिए वह पन्ना के निवास की ओर बढ़ा।

पन्ना को बणवीर के करतूतों की भनक पड़ चुकी थी। उसने किसी भी सूरत में उदयसिंह की रक्षा करने की ठानी। बणवीर के उसके महल की ओर आने का समाचार पाते ही वह उसके उद्देश्य को ताड़ गयी। उसने अपने विश्वस्त नौकर के साथ उदयसिंह को राजमहल से चुपचाप बाहर भिजवा दिया और अपने पुत्र को जो उदयसिंह की अवस्था का ही था, उसे राजकुमार के कपड़े पहना कर पलंग पर सुला दिया। बणवीर शीघ्रता से हाथ में नंगी तलवार लिए उदयसिंह की तलाश करता हुआ आया और पन्ना से पूछा—"उदयसिंह कहां है?" पन्ना ने पलंग पर सोये पुत्र की ओर अंगुली से संकेत किया, इसके पहले बणवीर ने तलवार के एक ही प्रहार से पन्ना के अबोध बालक चन्दन का सिर धड़ से अलग कर दिया। मेवाड़ के राजकुल के गौरव और आशादीप राजकुमार उदयसिंह के प्राणों की रक्षार्थ अपने पुत्र की बलि देने वाली इस वीर जननी के इस अनुपम और बेजोड़ त्याग का उदाहरण विश्व के इतिहास में अन्यत्र मिलना कठिन है।

वीरमती

वीरमती देवगिरि के राजा रामदेव के वीर सेनापति की पुत्री थी। बचपन में ही उसकी माता का देहान्त हो गया था। पिता ने उसे अच्छी शिक्षा देकर पाला। वीरमती के पिता एक युद्ध में काम आये तो इसे राजा रामदेव ने राजमहल में अपनी पुत्री के समान रखा। रामदेव की पुत्री गौरी और वीरमती दोनों सगी बहन की भांति रहने लगी। वीरमती साहसी, वीर और युद्ध-विद्या में प्रवीण थी। रामदेव ने इस वीर पुत्री की सगाई कृष्णराव नामक मराठा युवक से की, जो स्वयं बड़ा वीर था।

वीरमती की अभी सगाई ही हुई थी, विवाह सम्पन्न नहीं हुआ था। इस बीच अलाउद्दीन ने देवगिरि पर आक्रमण कर दिया। यवनों से मुकाबला करने मतवाले मराठा वीर निकल पड़े। वीरमती ने युद्ध के लिए प्रस्थान कर रहे कृष्णराव को कहा—"देश की रक्षा के लिए मर-मिटना ही राजपूत का प्रथम धर्म है। रणभूमि ही वीरो की विश्राम-स्थली है। अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित मत होना। मुझसे भी अधिक रणभूमि को प्यार करना, वीरमती की यही चाह है।"

यवन सैनिकों के साथ देवगिरि के सैनिकों का भयंकर संघर्ष प्रारम्भ होता है। प्रथम प्रहार में ही यवन सैनिक पीछे हटकर मैदान छोड़कर भाग खड़े हुए। परन्तु यह यवनों की चाल थी। देवगिरि के सैनिकों को चकमा देकर बहुत आगे तक बढ़ने दिया, फिर तीन ओर से उन्हें घेर कर जबरदस्त आक्रमण किया। राजा रामदेव इससे आश्चर्य में पड़ गया। उसके कई सैनिकों ने इस परिस्थिति में भी युद्ध जारी रखना चाहा परन्तु कृष्णराव ने कहा—"हमें कूटनीति से शत्रु-सैन्य की शक्ति का पूरा पता लगाना चाहिए।" रामदेव ने उसकी बात मान ली और कृष्णराव को ही इसका पता लगाने हेतु भेजा। कृष्णराव के अकेले ही जाने पर वीरमती को सन्देह हुआ। उसे भावी पति के कपटपूर्ण स्वभाव का अन्देशा हुआ और वह स्वयं मर्दाना वेश धारण कर पीछा करती हुई वहां गई जहां कृष्णराव यवन सेनापति के साथ झाड़ी में छिपकर सारा भेद बता रहा था। वीर सिंहनी को यह कब बर्दाश्त होता, उसका संदेह सत्य निकला। उसने अपने देशद्रोही भावी पति को ललकारा। ज्योंही कृष्णराव वीरमती की ओर उन्मुख हुआ त्योंही वीरमती ने उसके सीने में नंगी तलवार भोंक दी। दूसरे ही क्षण उसी तलवार से अपनी इह लीला समाप्त कर उस वीर पुत्री ने धर्म और कर्तव्य की एक साथ रक्षा की।

ताराबाई

ताराबाई छत्रपति शिवाजी की पुत्र-वधू थी। यह वीरांगना राजाराम की पत्नी थी। शिवाजी के द्वितीय पुत्र राजाराम की यह पत्नी बड़ी वीर और साहसी थी। शिवाजी की मृत्यु के बाद शम्भाजी और शम्भाजी के बाद शाहू ने राज्य-संचालन किया, किन्तु शाहू को औरंगजेब ने कैद में डाल रखा था। ऐसी स्थिति में इस वीर नारी ने मराठा शक्ति का संगठन किया और मुगल राज्य पर कई बार सफलता पूर्वक हमले कर छापे मारे। ताराबाई के इस कार्य में उसके विश्वस्त सेनापति शंकर नारायण का पूर्ण सहयोग मिलता रहा।

जिस हिन्दू राज्य की नींव डालने का कार्य सन् 1674 में शिवाजी ने किया, उसे ताराबाई ने आगे बढ़ाने का प्रयास किया। सन् 1680 में ससुर शिवाजी की और सन् 1700 में पति राजाराम की मृत्यु के उपरान्त भी यह वीरांगना मुगलों से सदा संघर्ष करती रही। औरंगजेब ने मराठों के कई दुर्गों पर अधिकार कर लिया था, उनमें से सिंहगढ़, पूना और पुरन्दर तीनों किलों पर ताराबाई ने पुनः अपना अधिकार स्थापित कर पूरे महाराष्ट्र में अपनी वीरता की धाक जमा दी थी। एक ओर जहां उसके विश्वासपात्र सहयोगियों और शुभाकांक्षियों को ताराबाई की सफलता पर हर्ष और गर्व था, वहीं शाहू और उसके द्वारा समर्थित लोग ताराबाई के विरुद्ध विभिन्न षड्यंत्र रचकर उसके कार्य में बाधक बन रहे थे। वीर ताराबाई ने सबका दृढ़ता और अदम्य साहस से मुकाबला किया और विश्वासघातियों व षड्यंत्रकारियों के सारे इरादों को विफल कर दिया।

शाहू की मृत्यु के बाद ताराबाई का पौत्र रामराज गद्दी पर बैठा। इस समय बालाजी पेशवा पूना पर अधिकार कर पूरी राज्य सत्ता हड़पने को उत्सुक था। उसने रामराज को कैद कर दिया। इस समय ताराबाई की अवस्था सत्तर साल की थी पर साहस अब भी कम न था। उसने पेशवा को परास्त करके पूना पर आक्रमण किया, वह डर कर भाग गया और ताराबाई ने पूना पर आधिपत्य स्थापित किया व अपने पौत्र रामराज को कैद से छुड़वाया। जीवन भर संघर्ष करते हुए ताराबाई ने जिस रणकुशलता, कूटनीतिज्ञता व बुद्धिमता का परिचय दिया, वह अनुकरणीय है!

जीजाबाई

अहमदनगर के लाखोजी की पुत्री जीजाबाई बड़ी वीर और कष्ट सहिष्णु महिला थी। इसका विवाह शाहजी के साथ हुआ। शाहजी जीजाबाई के प्रति कभी भी अनुरक्त नहीं रहा और जीजाबाई को अधिकांश समय पति के वियोग में अकेले ही कष्ट सह कर दिन काटने पड़े। उसके जीवन की एकमात्र आशा उसका इकलौता पुत्र शिवा था। वही शिवा जो आगे जाकर छत्रपति शिवाजी के नाम से विख्यात हुआ।

शाहजी दक्षिण भारत के बीजापुर राज्य में सेवारत था और वहां के सुल्तान का विशेष कृपापात्र था। शादी के कुछ समय पश्चात् ही जीजाबाई को अपने पति से अलग रहना पड़ा। शिवा का जन्म और फिर उसके दस वर्ष की अवस्था प्राप्त होने तक का सारा समय जीजाबाई ने अनेक कष्टों को सहकर बिताया। शाहजी ने दूसरी शादी कर ली थी अतः जब वह शाहजी द्वारा बीजापुर में बेटे सहित बुलवा ली जाती है, उसके बाद भी उसे पति का स्वाभाविक प्यार नहीं मिल पाया।

जीजाबाई बड़ी स्वाभिमानी नारी थी। धर्म में उसकी पूर्ण आस्था थी। शिवा का लालन-पालन जिस ढंग से उसने किया तथा वीरोचित गुणों का विकास, चारित्रिक विशेषता व दृढ़ संकल्पी स्वभाव की उसमें नींव डाली, वह प्रत्येक माता के लिए अनुकरणीय है। बच्चे के निर्माण में मां की भूमिका बहुत महत्वपूर्ण होती है और वह जैसा चाहे वैसा उसे बनाने में समर्थ होती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हर महान् व्यक्ति के व्यक्तित्व-निर्माण में उसकी मां की भूमिका बहुत अहम् रही है। पिता के समुचित प्यार से वंचित रहने वाला शिवा अपनी मां के स्नेहांचल में संसार की सारी निधियां पाकर निहाल हो गया। यह जीजाबाई की शिक्षा का ही परिणाम था कि शिवा में विशिष्ट चारित्रिक गुणों का विकास हो सका और उसने अनेक कष्टों का मुकाबला करते हुए भी अपने धर्म, जाति और देश की परम्पराओं और मर्यादाओं की रक्षा की। जीजाबाई की प्रेरणा से ही शिवा हिन्दू राज्य की स्थापना और मुगल आक्रान्ताओं को देश से निकालने के कार्य में आजीवन लगा रहा।

देवलदेवी

महोबे के वीर श्रेष्ठ यशोराजसिंह की पत्नी देवलदेवी स्वयं एक वीरांगना थी। महोबे के राजा ने अपमानित करके किसी कारणवश उन्हें देश से निर्वासित किया। देवलदेवी अपने पुत्र आल्हा ऊदल के साथ महोवा छोड़कर कन्नोज चली गयी। जाते समय देवलदेवी ने महोबे के राजा परमाल की रानी मल्हना को कहा—"महोवे पर कभी कोई संकट आ जाय तो याद करना, ये दोनों पुत्र अपनी मातृभूमि की प्राणपण से रक्षा करेंगे।" कुछ समय पश्चात् पृथ्वीराज चौहान द्वारा महोवे पर आक्रमण होता है और वहां का राजा परमाल घबराकर महोबे की रक्षा के उपाय हेतु मंत्रियों से परामर्श करता है। कोई उपाय जब वह नहीं खोज पाया तो रानी मल्हना के सुझावानुसार आल्हा ऊदल को कन्नोज से महोवा की रक्षार्थ बुलावा भेजा गया। आल्हा ऊदल अपने अपमान को भूले नहीं थे, अतः महोवे से आये दूत को क्रोध भरे शब्दों में कहा—"महोबा के चंदेलवंशीय राज्य के विस्तार हेतु हमने कोई कसर नहीं रखी थी, परन्तु हमारी सेवाओं के बदले हमें महोबा से निर्वासन का पुरष्कार मिला। अब चाहे भाड़ में जाय महोवा, हमें उससे क्या लेना देना। जहां रहते हैं, वही हमारा घर है।"

वीर हृदया देवल देवी ने अपने पुत्रों के ये उद्गार सुने तो वह बहुत दुखी हुई और उसके स्वदेश प्रेम तथा स्वाभिमान को ठेस पहुंची। अपनी जन्मभूमि पर आयी विपदा से वह चिन्तित हुई और उसकी रक्षार्थ अपने पुत्रों को ललकारते हुए कहा—"मैं आज दो पुत्रों की मां होकर भी निपूती हूं। मेरी कोख से पैदा हुए है, वे भी आज अपनी कुल मर्यादा का हठपूर्वक त्याग कर रहे है, अपनी जन्मभूमि की रक्षा करने से मुंह मोड़ रहे हैं। ऐसे पुत्रों से तो पुत्रों का न होना ही अच्छा था। कायर पुत्र कुल का कलंक होता है। क्या मैंने इस दिन के लिए ही तुम्हारा नौ मास तक गर्भ-भार धारण किया था। अगर तुम में अब भी क्षत्रियत्व शेष है तो जाकर अपनी जन्मभूमि की रक्षा करो। अपने स्वाभिमान से भी ऊंचा देश का मान होता है। तुम राजपूत होकर ऐसी बात करते हो। अपने कर्तव्य-पथ से विचलित हो रहे हो, यह तुम्हारे लिए शोभाजनक नहीं है। जाओ, प्राणों का मोह त्याग कर अपनी जन्मभूमि महोबा के मान की रक्षा करो।" वीर जननी ने इन वीरोद्गारों के साथ आल्हा ऊदल को महोबे की रक्षार्थ विदा किया।

प्रतापबाला

प्रतापबाला जामनगर के जाम जाड़ेचा रिडमल की पुत्री थी। इसका विवाह जोधपुर के महाराजा तखतसिंह के साथ हुआ था। जाड़ेची प्रतापबाला भी राम की भक्त थी तथा रामस्नेही सम्प्रदाय का इस पर अत्यधिक प्रभाव था। रामभक्ति की ओर आकृष्ट हुई। काव्यगुण सम्पन्न प्रतापबाला ने भक्ति के कई पद रचे। विभिन्न राग-रागनियों में रचे इनके पदों की सरसता व मधुरता पाठक का मन मोह लेती है। इन पदों में—जामसुता, प्रतापकोर, दुलारी जाम, जामसुता परताप आदि नाम प्रतापबाला ने अपने लिये प्रयुक्त किये हैं अतः इन विभिन्न नाम भेदों से मिलने वाले पद भी प्रतापबाला द्वारा ही रचित माने जाते हैं।

राम और कृष्ण दोनों एक ही आराध्य के रूप में यहां स्वीकार किये जाते रहे है। उसी परम्परा का अनुसरण जाड़ेची प्रतापबाला ने किया और अपने अधिकांश पद श्याम को सम्बोधित कर रचे। प्रतापबाला की कविता-शक्ति और भक्ति-भावना का अन्दाज उनके द्वारा रचित पदों को पढ़ने से स्वतः ही लग जाता है। जामसुता उस प्रतापबाला का एक पद भाव और भाषा के माधुर्य का रसास्वादन करने हेतु यहां प्रस्तुत करना समीचीन होगा—

वारी थारा मुखड़ा री स्याम सुजान।

मन्द मन्द मुख हास्य विराजे, कोटिक काम सजान।
अनियारी अखियां रस भीनी, बांकी भौंह कमान।
दाड़िम दसन अधर अरुनारे, वचन सुधा सुखखान।
जामसुता प्रभु सों कर जोरे, हो मेरे जीवन प्रान।

रंभक्त इसी प्रतापबाला का बनवाया हुआ रामस्नेही साधुओं का एक बहुत बड़ा धर्मस्थल 'रामाह्लोला' के नाम से जोधपुर में आज भी विद्यमान है।

चांपादे

जैसलमेर के महारावल हरराज की पुत्री चांपादे को अपने पिता से ही काव्य-सृजन की प्रेरणा मिली। महारावल हरराज स्वयं पिंगल शास्त्र का ज्ञाता व साहित्यिक रुचि का था। महारावल के दरबार में कवियों का आदर होने के कारण अनेक काव्य-कृतियों का सृजन हुआ। साहित्यिक वातावरण में पली इस राजकुमारी को पृथ्वीराज राठौड़ जैसा प्रतिष्ठित कवि पति रूप में प्राप्त हुआ और उनके सानिध्य से उसके काव्य-सृजन को प्रेरणा मिली होगी। चांपादे (चंपावती) की कोई विशिष्ट कृति या रचना उपलब्ध नहीं हुई है फिर भीउस के निम्नलिखित दोहे राजस्थानी साहित्य के पाठकों में आज भी बहुत प्रसिद्ध हैं। पृथ्वीराज का पहला विवाह चांपादे की बड़ी बहन लालादे से हुआ था। लालादे की मृत्यु के पश्चात् पृथ्वीराज ने चांपादे से दूसरा विवाह किया। छोटी रानी चांपादे युवा थी, पृथ्वीराज अवस्था में थे, अतः एक दिन पृथ्वीराज ने अपनी अवस्था का जिक्र करते हुए छोटी रानी के यौवन और सौन्दर्य की ओर संकेत करते हुए जब यह कहा—

पीथल धोळा आविया, बहुली लागी खोड़।
पूरे जोबन पदमणी, ऊभी मुक्ख मरोड़॥

अपने पति के आशय को समझ कर चांपादे ने जो रसमय और उपयुक्त प्रत्युत्तर दिया उसमें उसकी पति परायणता और पति के प्रति अगाध स्नेह-भाव प्रमुख रूप से अभिव्यंजित होता है—

प्यारी कहे पीथल सुणो, धोळां दिस मत जोय।
नरां नाहरां डिगभरां, पाकां ही रस होय॥
खेजड़ पक्कां धोरियां, पंथज गउधां पांव।
नरां तुरंगां बन फळां, पक्का पक्का सांव॥

पति के प्रति ऐसा स्नेह और सम्मानपूर्ण भाव रखने के कारण ही राजपूत नारियां भारतीय संस्कृति के आदर्शों का भली भांति निर्वाह कर सकीं और इस देश की संस्कृति को गौरवमयी महिमा से मंडित करने में अपना अनुपम सहयोग दिया।

लालां मेवाड़ी

मेवाड़ के महाराणा मोकल की राजकुमारी लालां स्वाभिमानी ग्रौर बहुत ही महत्वाकांक्षी नारी थी। उसका विवाह गागरोनगढ़ के स्वामी ग्रचलदास खीची के साथ हुग्रा। लालां ने प्रेम ग्रौर व्यवहार से ग्रपने पति पर पूर्ण ग्राधिपत्य जमा लिया। यही नहीं ग्रचलदास खीची लालां जैसी रानी पाकर निश्चिन्त हो गया। राजकाज की सारी व्यवस्था रानी के हाथ में थी ग्रौर प्रभावशाली ढंग से उसने इस गुरुतर भार को उठाया ग्रौर वर्षों तक सफलता के साथ संचालन किया।

ग्रचलदास खीची बड़ी रानी लालां से बिना पूछे जांगलू की उमा सांखली से मारवाड़ में ग्रपना गुप्तरूप से सम्बन्ध तय कर लिया, पर लालां का प्रभाव उस पर इतना था कि बिना उसकी स्वीकृति के विवाह संभव नहीं था। पति द्वारा स्वीकृति चाही गयी तब चतुर ग्रौर नीतिज्ञ लालां ने पति को सशर्त विवाह की ग्रनुमति दी। इस शर्त के मुताबिक ग्रचलदास खीची बिना उसकी ग्राज्ञा के उमा सांखली के रनिवास में नही जा सकता था। इस प्रकार उसने ग्रपने पति की बात भी रख ली ग्रौर ग्रपनी सौत से प्रत्येक नारी को जो ग्राशंका बनी रहती है, उससे भी मुक्ति पाली।

पत्नी ग्रपने पति पर पूर्ण ग्राधिपत्य रखना चाहती है, यह नारी-सुलभ स्वभाव है। लालां ने ग्रपने प्रेम पर एकाधिकार रखने का प्रयास किया। वह युग ही ऐसा था कि उस समय राजा एक से ग्रधिक विवाह करते थे। उस स्थिति में प्रेम के एकाधिकार की बात बडी कठिन थी पर राजपूत नारियों का पति के प्रति ग्रद्भुत समर्पित भाव रहा। उससे उनके जीवन में कटुता या बिखराव पैदा नहीं हुग्रा। ग्रपने स्वाभिमान को ठेस लगती देख राजपूत नारी बड़े से बड़ा त्याग करने से कभी नही हिचकिचायी।

सात वर्ष तक ग्रपने पति को प्रेमपाश में बांधे रखने वाली लालां मेवाड़ी ने ग्रपनी सौत उमा को पति की शक्ल तक नहीं देखने दी ग्रौर जब उसका पति उसके नियंत्रण से बाहर होकर उमा साखली के प्रति ग्राकृष्ट हुग्रा तो उस स्वाभिमानी नारी ने स्वेच्छा से पति का परित्याग कर शेष सारा जीवन एकाकी बिताया। ग्रपने प्रेमाधिकार पर किसी का दखल उसे स्वीकार नहीं था।

काकरेची

गुजरात प्रान्त में काकरेची प्रदेश के अन्तर्गत दियोधर नाम का गांव है। अगराजी बाघेला दियोधर के ठाकुर थे और काकरेची इन्हीं की पुत्री थी। काकरेची बहुत बुद्धिमान् थी। काकरेची बाघेली की काव्य-सृजन में रुचि थी। इस विदुषी महिला का विवाह मारवाड़ के पश्चिम में स्थित सांचोर परगने के सोनगरा चौहान राव बल्लू के पुत्र नरहरदास के साथ हुआ था।

नरहरदास अपने पिता की भांति बड़ा वीर और साहसी था। सच्चे क्षत्रिय की भांति वह शाहजहां के लड़के से युद्ध करते हुए रणखेत रहा। इसकी सूचना जब काकरेची के पास पहुंची तो तत्काल उसने विधवा वेश धारण कर अपनी पति परायणता का परिचय दिया। नरहरदास की शक्ल से मिलता-जुलता व्यक्ति नरहरदास का वेश बनाकर उसके पिता अगराजी के पास आया। अपने आपको नरहरदास बताकर काकरेची के सतीत्व भंग का यह एक षड्यन्त्र था। उसके भुलावे में काकरेची बाघेली के पिता अगराजी आ गये और अपनी पुत्री को समझाया कि नाहरदास जीवित है और उनके रणखेत की घटना असत्य है। अतः तुम अपने वैधव्य के प्रतीक इन वस्त्रों को उतार कर सुहागिन का वेश धारण करो।

काकरेची बाघेली, जिसे अपने पति पर भरोसा था और उसके वीरोचित स्वभाव से वह परिचित थी कि वह शत्रु के हाथ पराजित होकर जीवित घर नहीं लौट सकता, अपने संकल्प पर दृढ़ रही। पिता द्वारा भरोसा दिलाने के उपरान्त भी उस वीर नारी के हृदय में किसी तरह का असमंजस नहीं हुआ। अपने पिता को उत्तर देते हुए उसने निवेदन किया—

घर काळी काकर धरा, अध काळा अगरेस।
नरहर नेजां वाजिया, क्यों पलटाऊ वेस।।

अन्त में यह सत्य सबके सामने प्रकट हो जाता है कि नरहरदास जीवित नहीं है। उसका रूप बनाकर आने वाला हमशक्ल कोई दूसरा ही व्यक्ति था और धोखा देने की नीयत से आया था। परन्तु इस प्रकार के छलावे में काकरेची बाघेली जैसी वीर राजपूत नारी कब आने वाली थी।

उमा सांखली

जांगलू प्रदेश के शासक खींवसी सांखला की पुत्री उमा सांखली अत्यन्त रूपवती थी। उमा सांखली के रूप-सौन्दर्य की प्रसिद्धि सुन कर गागरोनगढ़ का शासक अचलदास खीची उस पर मोहित हो गया। लालां मेवाड़ी से अचलदास खीची का विवाह हो चुका था और वह अपनी पूर्व पत्नी के प्रेमपाश में पूर्णरूप से आबद्ध था। परन्तु उमा सांखली के रूपलावण्य से प्रभावित हो उसने लालां मेवाड़ी से छिपकर मारवाड़ में सम्बन्ध तय कर लिया। लालां मेवाड़ी चतुर, महत्वाकांक्षी और सतर्क थी। उसने अपने पति अचलदास खीची से यह वचन लेकर कि "नववधू के रनिवास में मेरी स्वीकृति के बिना कभी नहीं जायेंगे।" उसे उमा सांखली के साथ विवाह करने की अनुमति दे दी।

अचलदास उमा सांखली से विवाह कर पुनः गागरोनगढ़ लौटा। नववधू को अलग महल बनवाकर उसमें रखा गया और अपने वचनानुसार अचलदास उमा सांखली के महल में नहीं गया। नव परणीता उमा सांखली को विरह की एक एक घड़ी काटनी मुश्किल हो रही थी। एक दिन एक वर्ष के समान बीत रहा था। वियोग और विरह की घड़ी में झीमा चारणी नाम की सहेली ही एक मात्र सहारा थी। झीमा वीणावादन में प्रवीण थी, इससे वह अपनी सहेली का जी कुछ हल्का करती। यौवनकाल में पति से उपेक्षित नारी का जीवन बड़ा कष्टदायक होता है। अपने पति की विरहाग्नि में जलते हुए उमा सांखली को सात वर्ष हो गये तो उसके धैर्य का बांध टूटने लगा।

स्त्रियों को आभूषण बहुत प्रिय होते है। उमा सांखली के हीरों के हार की प्रशंसा सुन लालां मेवाड़ी के मन में उसे देखने की बड़ी प्रबल जिज्ञासा जगी। उमा ने हार के बदले पति अचलदास को अपने महल में भेजने की शर्त रखी, जिसे लालां ने स्वीकार किया। रात्रि में वीणा वादन करती हुई झीमा ने लालां मेवाड़ी द्वारा हार के बदले पति को बेचने की बात अचलदास को सुनायी। अचलदास इसे सुनकर अपनी रानी लालां मेवाड़ी से रुष्ट हो गया और सांखली को बेवजह इतना लम्बा कष्ट झेलना पड़ा, उसके लिए माफी मांगी। सात वर्षो की कठिन तपस्या के बाद उमा सांखली को अपने पति का पुनः प्यार मिला और उसका जीवन सुखदायी बना।

राड़धरी

मारवाड़ के अन्तर्गत राड़धड़ा नामक प्रान्त के राणा की पुत्री राड़धरीजी साहित्यानुरागी व काव्यप्रेमी थी। वह स्वयं काव्य रचना करती थी। सिरोही के राव के साथ उसकी शादी सम्पन्न हुई। भाग्य से राड़धरीजी को ऐसा पति प्राप्त हुआ जो स्वयं काव्य और साहित्य में रुचि रखता था। पति-पत्नी की समान अभिरुचि होने के कारण उनका अधिकांश समय साहित्य-साधना में ही व्यतीत होता था।

एक बार रावजी अपने महल के झरोखे में रानी राड़धरीजी के साथ बैठे वर्षा के सुन्दर और सुहावने मौसम का आनन्द ले रहे थे। सिरोही राज्य में स्थित आबू पर्वत की सुरम्य उपत्यका व वन-उपवनों की छटा का बखान रावजी ने रानी राड़धरी को सुनाते हुए इस प्रकार किया—

ट्र्ंके ट्र्ंके केतकी, झिरणे झिरणे जाय,
अर्बुद की छबि देखतां, और न आवे दाय।

रानी को समझते देर नहीं लगी कि उसका पति अपने देश की प्रशंसा कर रहा है और मारवाड़, जिस देश की वह रहने वाली है, उसे नीचा दिखाने का प्रयत्न कर रहा है। नारी को अपना पीहर बड़ा प्यारा होता है। पति की सुसम्पन्नता के बाद भी पीहर के साथ जितनी आत्मीयता रहती है, उतना ससुराल के प्रति नहीं रहती। राड़धरी जैसी स्वाभिमानी राजपूत नारी को अपनी जन्मभूमि और पीहर के प्रति निन्दा या उपेक्षा-भाव कब सहन होता। उसने तत्काल रावजी को कहा—

जब खाणो भखणो जहर, पाळो चलणो पंथ।
अर्बुद ऊपर बैठणो, भलो सरायो कंथ॥

फिर अपनी जन्म भूमि, जहां उसका सम्पूर्ण बाल्यकाल बीता, उस पीहर की महिमा का बखान करते हुए कहा—

घर ढांगी आलम धणी, परघळ लूणी पास।
लिखियो जिणनै लाभसी, राड़धड़ा रो वास॥

राजपूत नारी सब कुछ सहन कर सकती है पर जहां उसके स्वाभिमान का प्रश्न होता है वहां वह अपने प्राणों से प्रिय पति से भी भिन्न अपना मत प्रस्तुत करने से नहीं हिचकिचाती।

हरिजी

महाराजा मानसिंह की द्वितीय रानी चावड़ी का जन्म गुजरात के चावड़ा राजपूत वंश में हुआ था। उसका नाम हरिजी था। हरिजी को बाल्यकाल से ही काव्य रचना का शौक था और फिर महाराजा मानसिंह जैसे पति के सानिध्य से कविता और ज्ञानविद्या दोनों में वह निपुण हो गयी। महाराजा मानसिंह स्वयं कवि थे। अपने गुणग्राही पति को हरिजी चावड़ी ने काव्य और संगीत से रिझा लिया था। रसिकराज राजा मान विश्राम के क्षणों मे अपनी इस काव्य और संगीत विद्या में निपुण रानी के काव्य और संगीत का रसास्वादन करते थे।

रानी हरिजी चावड़ी की ख्याल, टप्पे और गीत इत्यादि रचनाएं विविध राग-रागनियों में उपलब्ध होती हैं। लोकगीतों से प्रभावित उनकी समस्त रचनाओं में शृंगार रस की प्रधानता दृष्टिगोचर होती है। उदाहरणार्थ उनके पद यहां द्रष्टव्य है—

[1]

बेगा नी पधारो म्हारा आलीजा जी हो,
छोटी-सी नाजक धण रा पीव।
ओ सांवणियो उमग रह्यो रे,
हरिजी ने ओढ़ण दिखणी चीर।
लाडीजी रो थां पर जीव,
छोटी-सी नाजक धण रा पीव।

[2]

रंग भीना राजा जी,
सालूडो मंगा दो सांगानेर रो।
अगन कटारी भांत अनोखी,
लागो छै लप्पो चाह मेर रो।
हरो रंग कळियां रो घाघरो,
आगरे रो घेर घुमेर रो।
रसीले राज म्हे जिणरी खातर,
रूसणो कियो छै बीजी वेर रो।

रानी चावड़ी की रचनाओं में कल्पना, अनुभूति, माधुर्य का सुन्दर समावेश देखने को मिलता है। नारी हृदय की हार्दिक अनुभूति सहज ढंग से अपनी भावभरी भाषा में अभिव्यक्त की गयी है। इससे चावड़ी का काव्यानुराग और साहित्य-प्रेम प्रकट होता है।

प्रताप कुंवरी

प्रताप कुंवरी जोधपुर राज्यान्तर्गत जाखण गांव के ठाकुर गोयन्ददास भाटी की पुत्री थी। प्रताप कुंवरी बड़ी प्रतिभासम्पन्न और कुशाग्र बुद्धि की थी। काव्य रचना में उसकी अत्यधिक रुचि थी। पिता को विलक्षण बुद्धिवाली इस कन्या के लिये उपयुक्त वर की चिन्ता हुई। सौभाग्य से जोधपुर के महाराजा मानसिंह के साथ प्रताप कुंवरी का विवाह सम्पन्न हुआ।

प्रताप कुंवरी की बाल्यकाल में प्रस्फुटित काव्यानुरागी प्रकृति मानसिंह जैसे विद्यानुरागी पति के संसर्ग से और भी अधिक विकसित हुई। उसकी काव्य रचना में सांसारिक प्रेम और शृंगारिक भावों की बजाय राम भक्ति की भावना प्रबल रूप से अभिव्यक्त हुई है। पूर्णदास तथा दामोदरदास जैसे संतों की सत्संग और सत्प्रेरणा से रानी प्रताप कुंवरी राम भक्ति की ओर प्रवृत्त हुई।

प्रताप कुंवरी द्वारा रचित—1. ज्ञान सागर 2. ज्ञान प्रकाश 3. प्रताप पचीसी 4. प्रेमसागर 5. रामचन्द्र नाम महिमा 6. रामगुण सागर 7 रघुवर स्नेह लीला 8. राम प्रेम सुख सागर 9. राम सुजस पचीसी 10 रघुनाथ जी के कवित्त 11. प्रताप विनय 12. हरिजस गायन व स्फुट भजन पर हरजस मिलते हैं। प्रताप कुंवरी की भाषा सरल, सुबोध व सरस राजस्थानी है। प्रताप कुंवरी की राम भक्ति पर गहरी आस्था थी, जब कि उनके पति महाराज मानसिंह नाथ सम्प्रदाय में अटूट श्रद्धा रखने वाले थे।

राजवैभव में पोषित हुई यह नारी अन्य रानियों की भांति सुख-सुविधा व ऐश्वर्य भोग मे अपना जीवन नहीं बिताकर ईश्वर आराधना और उसकी भक्ति में लीन रही। सांसारिक सुखों का परित्याग कर स्वेच्छा से भक्ति मार्ग का अनुसरण करने वाली राम भटियाणी रानी प्रताप कुंवरी विदूषी व उच्चकोटि की कवयित्री भी थी। इस भक्तिमति के भजनों का जोधपुर, जैसलमेर और बीकानेर क्षेत्र के जन-जीवन में आज भी प्रचार है।

गोपाल दे

गोपाल दे खींवकरण सीधल की पुत्री थी । मारवाड़ के सिन्धल-वाटी क्षेत्र में जन्मी इस वीर कन्या का विवाह मध्यप्रदेश में स्थित चाचरणी राज्य के संस्थापक राजा उग्रसेन के साथ हुआ। राजा उग्रसेन की मृत्यु के पश्चात् उसका नाबालिग पुत्र वाघसिंह गद्दी पर बैठता है । गोपाल दे सींधल अपने नाबालिग पुत्र की संरक्षिका स्वयं बनकर और सारे राज्य का प्रबन्ध अपने हाथ में लेती है । गोपाल दे सींधल ने बहुत ही कुशलता के साथ अपने राज्य का संचालन किया और अपने पति की मृत्यु के पश्चात् भी उस विधवा राजपूत नारी ने अपने राज्य पर किसी प्रकार की आंच नहीं आने दी।

मुगल सम्राट् जहांगीर ने खीची राजपूतों की बढ़ती हुई शक्ति पर रोक लगाने के लिए बून्दी के राव रतन हाडा को खींचीवाडा प्रदेश का बहुत-सा भाग प्रदान कर दिया जिसमें चाचरणी राज्य का भू-भाग भी सम्मिलित था। गोपाल दे ने इसका प्रतिरोध किया तब हाडा व मुगलों की सम्मिलित सेना का चाचरणी पर आक्रमण होता है। ऐसी विकट व संकटपूर्ण घड़ी में भी गोपाल दे ने अपना धैर्य नहीं खोया और साहस व हिम्मत के साथ अपने देश की रक्षा के लिए संग्राम करने को उद्यत हुई । वीर वेष धारण कर उस वीरांगना ने शत्रुओं का रणभूमि में जाकर डटकर मुकाबला किया । गोपाल दे के वीरत्व व शौर्य प्रदर्शन के सम्बन्ध में किसी कवि द्वारा कही गयी ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं--

कै भई चंद बुधाधर दच्छन, शाहन शाह निजाम की जाई ।
कै दुरगावति सेत चढे रण, फौज बहादुर की बिच लाई ।
कै भई राणी गोपाल दे सिंधल, राव रतन सूं तेग बजाई ।
हो असवार हथियार ले सिंधल, बाघन हो रही बाघ की जाई ।

मुगल समर्थन पाकर राव रतन हाडा ने चाचरणी पर अधिकार करना आसान समझ लिया था कि एक विधवा नारी उसका क्या प्रतिवाद करेगी किन्तु गोपाल दे सींधल ने उनकी आशाओं पर पानी फेर दिया । उस अदम्य साहसी राजपूत महिला ने देश की रक्षा के लिए रणांगण में जो वीरता प्रदर्शित की वह अनुकरणीय है और इससे यह ज्ञात होता है कि क्षत्रिय वीरांगनाएँ भी समय आने पर शत्रुओं के लिए रण चण्डी का रूप धारण कर लेती हैं ।

विष्णु प्रसाद कुंवरी

विष्णु प्रसाद कुंवरी रीवां के महाराजा रघुनाथसिंह बाघेला की पुत्री थी। इसका विवाह जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह द्वितीय के छोटे भाई महाराज किशोरसिंह के साथ हुआ था। विष्णु प्रसाद कुंवरी का बचपन से ही ईश्वर आराधना के प्रति झुकाव रहा। श्रीकृष्ण विष्णु प्रसाद कुंवरी के आराध्य थे और रामस्नेही सम्प्रदाय के संत दयालदास की शिष्या होते हुए भी आनन्दकर श्रीकृष्णचन्द्र का रामानुज सम्प्रदाय की विधि से पूजन-अर्चन करती थी। कृष्ण को भी राम का ही रूप जानती थी और विष्णु के अवतार कृष्ण को दीनानाथ के सम्बोधन से पुकारा करती थी।

विष्णु प्रसाद कुंवरी भक्ति परायणा के साथ साथ काव्यानुरागी भी थी। उसमें काव्य रचना की क्षमता थी। बाघेली विष्णु प्रसाद कुंवरी के लिखे हुए अवध विलास, कृष्ण विलास और राधा विलास तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। इन ग्रंथों के अलावा अनुराग लीला, दम्पत मोहनी, हिंडोरा वर्णन, महल हिंडोरा, दधि लीला, पनघट लीला, विरह लीला इत्यादि उनके फुटकर पद भी मिलते हैं।

राजपरिवार में पैदा हुई विष्णु प्रसाद कुंवरी का सांसारिक सुख भोगों के प्रति विशेष आकर्षण नहीं था। ऐश्वर्य और धन सम्पत्ति को ही सब सुखों का आधार मानने वाले राजवर्गीय लोग जब भोग-विलास में डूबकर अपनी जिन्दगी का सर्वनाश करने में लगे थे उस परिस्थिति में रहते हुए भी विष्णु प्रसाद कुंवरी ने राम और कृष्ण की आराधना की। अपने आराध्य देव के चरित्र तथा महिमा का बखान करने के लिए अवध विलास, कृष्ण विलास, राधा रस विलास इत्यादि भक्ति पूर्ण ग्रन्थों की रचना की।

वास्तव में जगत् की भौतिक सुख-सुविधाएँ अनित्य हैं पर साधारण व्यक्ति इन अनित्य सुखों की प्राप्ति में ही अपना जीवन खो देता है। नित्य सुख केवल ईश्वर भक्ति से ही संभव है। यह बात संसार के विरले लोग ही जान पाते हैं। विष्णु प्रसाद कुंवरी ने भी नित्य सुख प्राप्ति के मार्ग का अनुसरण कर मात्र भौतिक सुख-सुविधाओं में जीवन बिताना व्यर्थ समझा।

रत्नकुंवरी

काव्यगुण सम्पन्न रत्नकुंवरी जाखण गांव के निवासी भाटी लक्ष्मण सिंह की पुत्री थी। इसका विवाह ईडर के महाराजा प्रताप सिंह के साथ हुआ। प्रसिद्ध रामभक्त परायण प्रताप कुंवरी की यह भतीजी थी। अपनी बुआ की भांति ही रत्नकुंवरी को काव्य रचना के साथ साथ भगवद् भक्ति के प्रति भी रुचि थी। अतः राम के रूप वर्णन तथा महिमा गान में कई पदों की रचना की।

रत्नकुंवरी की रचनाओं में पांडित्यपूर्ण प्रदर्शन की जगह सहज और सरस अभिव्यक्ति देखने को मिलती है। भगवद् भक्ति में पांडित्य की आवश्यकता नहीं होती। वहां तो भक्त के हृदयगत भावों की मधुर छटा ही मन को भाती है। ईश्वर को औपचारिकता नहीं सहजता अधिक प्रिय है और यही कारण है कि संत साहित्य में जितनी सहजता दृष्टिगोचर होती है उतनी अन्यत्र दुर्लभ है। अतः रत्न-कुंवरी के पदों में भाव ही प्रमुख है, भाषा का इतना महत्व नहीं है।

रत्नकुंवरी द्वारा रचित पद यहां द्रष्टव्य हैं। भाव भरे भगवद् भक्ति के ये पद सहृदय पाठकों में भक्ति की महिमा उद्घाटित करने की क्षमता रखते हैं—

[1]

रघुवर म्हारा रे, म्हांकूं दरस दिखा जा रे।
तो देखन की चाह घनी है, टुक इक झलक दिखा जा रे॥
लाग रही तेरी केते दिन की, मीठी बेन सुना जा रे।
रतन कुंवरि तो सों करे विनती, अेक वेर ढिग आ जा रे॥

[2]

सियावर तेरी सूरत पै हूं वारी रे।
कीट मुकट की लटक मनोहर, म्हानूं लागत है अति प्यारी रे॥
वा छवि निरखत को मो नैना, जोवत बाट तिहारी रे।
रतन कुंवरि कहै मो ढिग आ कै, झलक बता जा धनुधारी रे॥

[3]

मेरो मन मोयो रंगीले राम।
उनकी छवि निरखत ही मेरो बिसर गयो सब काम॥
अष्ट पहर मेरे हिरदे बिच आन कियो निज धाम।
रतन कुंवर कहे उनको पल-पल, ध्यान करूं नित साम॥

रूप देवी

रूप देवी शाहपुरा के अमरसिंह की पुत्री थी और अलवर के राजा विनयसिंह के साथ इसका विवाह सम्पन्न हुआ था। रूप देवी राम की भक्ति में लीन रहती थी। उसके काव्यत्व का गुण भक्ति के भावों को अभिव्यक्त करने में सहायक सिद्ध हुआ और उसने अपने आराध्यदेव राम की महिमा का गुणगान करते हुए 1. रामरस 2. रूप मंजरी और 3. रूप रुकमणी मंगल जैसे काव्य ग्रन्थों की रचना की। रूप देवी द्वारा रचित रामरास में कृष्णरास की तरह सरयू तट पर रामरास की अभिनव कल्पना देखने को मिलती है। रूप मंजरी काव्य में 330 पद हैं। मंगल काव्यों की परम्परा में रूप रुकमणी मंगल लिखा हुआ बहुत सरस काव्य है।

रूप देवी द्वारा रचित इन राम भक्ति के काव्यों में भाषा और भावों दोनों की सरसता, विभिन्न छन्द अलंकारों व राग-रागनियों की अनुपम छटा देखने को मिलती है। राम भक्ति की भावना पदों के लालित्य से और ज्यादा मुखरित हुई है। रूप देवी द्वारा रचित पद यहां द्रष्टव्य हैं—

[1]

राम सयन सुख चैन करोगे।
झुकत पलक पल छनक छबीली पलकां पाव धरोगे।।
चरण चहत चित चापि अली जन भक्तन पीर हरोगे।
रूप राम रस माधुरि मूरति आनन्द भवन भरोगे।।

[2]

सब मिल रास रच्यो मझ रात।
तट सरजू की तीर निकट अति सहस सखा लै साथ।।
घुंघरू झनक झनकार सबद सुनि चकित भयो ब्रह्म मुसकात।
संकट सक्ति चकित अति आतुर, निरखि सरूप रघुनाथ।।

बांकावती

बांकावती लिवाण के कछवाहा राजा आनन्दराय की पुत्री थी। इसका विवाह किशनगढ़ के महाराजा राजसिंह के साथ हुआ। बचपन से ही यह काव्यानुरागी व कृष्णभक्त थी। रानी बांकावती अपने आराध्य की भक्ति भावना में सदा निमग्न रहा करती थी। बांकावती ने श्रीमद्भागवत का छन्दोबद्ध अनुवाद राजस्थानी भाषा में किया जो 'ब्रजदासी भागवत' के नाम से प्रसिद्ध है। भागवत का यह भाषानुवाद अत्यन्त सरल व सहज रूप में प्रस्तुत किया गया है और आम पाठक के शीघ्र समझ में आने वाला है।

ब्रजदासी भागवत में प्रारम्भ के मंगलाचरण में विविध देवताओं और ऋषियों को नमन करने के पश्चात् गुरु को वंदन इस प्रकार किया गया है—

श्री गुरुपद वंदन करूं, प्रथमहि करूं उछाह।
दम्पति गुरु तिहुं की कृपा, करो सकल मो चाह ।।
वार वार बंदन करौं, श्री वृषभान कुमारि।
जय जय श्री गोपाल जू, कीजै कृपा मुरारि ।।

मंगलाचरण के वंदन के पश्चात् भागवत के संपूर्ण कथा प्रसंगों को भी चौपाई और दोहा छन्द के माध्यम से अनूदित किया है। भक्ति के सरल मार्ग का अनुसरण करते हुए लोग इस त्रिविध संतापों से मुक्ति पा सकते है। बहुत ही सरल उदाहरणों द्वारा यह बात ब्रजदासी भागवत में समझायी हुई है—

परम प्रेम परमेश्वर स्वामी, हम तिय ध्यान धरत हिय ठामी।
यहै त्रिविध झूठो संसारा, भांति भांति बहुविधि निरधारा ।।
अरु सांचे सो देत दिखाई, सो सतिता प्रभु ही की छाई।
जैसे रेत चमक मृग देखे, जल को भ्रम मन मांहि सपेखें ।।
जल भ्रम झूठ रेत ही सत्या, भ्रम सों दीस परत जल छत्या।
जल भ्रम कांच मांहि ज्यों होता, सो झूठो सति कांच उदोता ।।

जगत् की नश्वरता और माया के भ्रम से बचने का संदेश जो यहां के मनीषियों ने दिया, उसे हृदयंगम करने तथा लोक-कल्याण की भावना से प्रचारित करने में भी राजपूत नारियां पीछे नही रही।

रूपांदे

रूपांदे महवे के रावल माल की पत्नी थी। उगमसी भाटी की शिष्या संत कवयित्री के रूप में विख्यात रूपांदे रुणीचे के रामदेव की अनन्य भक्त थी। रामदेव के जागरण व जमों में जाने के कारण उसकी भक्ति के प्रति परिवार जन तो क्या स्वयं पति रावळ माल ने भी संदेह किया। धारू मेघवाल के घर उसके गुरु का आगमन सुनकर रानी रूपांदे वहां चली गयी। रावळ माल इससे बहुत क्रोधित हुआ और अपनी पत्नी के चाल-चलन पर सन्देह कर उसकी हत्या करने का प्रयास किया। रूपादे के पास जो पूजन की थाली थी, उसके ऊपर का वस्त्र हटाने पर उसमें विभिन्न प्रकार के फूल खिले हुए देखे तो रावळ माल स्तंभित रह गया और अपनी पत्नी की भक्ति से प्रभावित होकर स्वयं भी भक्ति मार्ग की ओर प्रवृत्त हुआ। आगे चलकर यही रावळ माल प्रसिद्ध संत मल्लीनाथ के रूप में प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार रूपांदे ने अपनी भक्ति के प्रभाव से पति को मोक्ष के मार्ग की ओर मोड़ा। 'रूपांदे की वेल' में रूपांदे की भक्ति एवं उसके जीवन की चमत्कार भरी घटनाओं का वर्णन मिलता है।

रूपांदे के भजन आज भी पश्चिमी राजस्थान के ग्रामीण अंचल में बहुत लोकप्रिय हैं। रूपांदे ने तत्कालीन समाज की रूढ़ियों को तोड़कर एक साहसिक कदम उठाया। छुआछूत, ऊंच-नीच आदि के भेदभाव को वह व्यर्थ समझती थी तथा अपने कुल और परिवार के तत्कालीन मान्य रीति-रिवाजों का बंधन तोड़कर समाज को एक नवीन विचार और दिशा प्रदान की। मध्यकाल में एक नारी द्वारा ऐसा साहसिक कार्य राजपूत नारी रूपांदे की दृढ़प्रतिज्ञता का परिचायक है। उसने सांसारिक सुखों को व्यर्थ मानकर ईश्वर भक्ति का परम मोक्ष का मार्ग बतलाया। अपने भजनों में उसका यह संदेश स्पष्ट रूप से मुखरित हुआ है। जग वैषम्य की कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

काचे तांतण तांणो तणियो तांण्यां पैला टूटै रे।
मोटे जळ रो नादियो वरसंता पैला मूकै रे।
साध रे घर मंधणी, फूहड़ रे घर नार रे।
रोहड़ै ने रूप दियो, भूल गयो करतार रे।

डोड गेहली

किसी समय डोडवाने में डोड राजपूतों का राज्य था। पाबू राठौड़ के बड़े भाई बूडा का विवाह डीडवाने के जिस डोड राजपूत कन्या से हुआ उसका नाम गेहली था। डोड शाखा की राजपूत होने के कारण डोड गेहली कहलाती थी। जींदराव खीची से युद्ध करते हुए पाबू राठौड़ और बूडा राठौड़ दोनों वीरगति को प्राप्त हुए। अपने पति बूडा के युद्ध मे मारे जाने के बाद पतिपरायणा डोड गेहली गर्भवती होते हुए भी सती होने को तैयार हुई। लोगों ने उसे समझाया कि तुम गर्भवती हो, पेट में तुम्हारे सात माह का बच्चा है, अतः तुम सती नही हो सकती।

गर्भवती का सती होना धर्म वर्जित समझा गया है और यहां इसकी पालना भली प्रकार से होती रही है। डोड गेहली को धर्मानुसार एवं पूर्व की सती परम्परा को ध्यान में रखते हुए जब सती होने से रोकने की कोशिश की तो उसने सोचा—"मै सिर्फ गर्भवती होने के कारण पति के साथ सती होने से वचित हो रही हूं।" पति के बिना एक क्षण भी जीवित रहना उसने व्यर्थ समझा। पति के साथ सती होने को डोड गेहली इतनी उत्सुक थी कि उसने स्वयं ने कटारी से अपना पेट चीरकर सात माह के बच्चे को बाहर निकाला। अपने बच्चे को धाय को सुपुर्द किया। पेट चीर कर निकाले गये उस बच्चे का नाम झरडा रखा गया। झरड़ा बड़ा सिद्ध और वीर पुरुष हुआ। डोड गेहली के पुत्र इसी झरड़े ने जींदराव खीची को मारकर अपने पिता और चाचा की मृत्यु का वैर लिया।

अपने गर्भस्थ शिशु को स्वयं ने पेट चीर कर बाहर निकाला और पति परायणा डोड गेहली अपने पति के साथ सती हुई। राजपूत नारी के वीरत्व भरे ऐसे अद्भुत उदाहरण क्या अन्यत्र कही देखे जा सकते है? राजपूत नारी के सचमुच कितने विचित्र, अनोखे; त्याग, शौर्य और बलिदान भरे किस्से है, जो बेजोड़ हैं।

सारन्धा

सारन्धा ओरछा (बुन्देल खण्ड) नरेश चम्पतराय की पत्नी थी। सारन्धा बड़ी स्वाभिमानी, उदार, शरणागतवत्सल व वीर हृदया थी। चम्पतराय के कई रानियां थीं पर सारन्धा जैसी विशिष्ट गुणसम्पन्न रानी का उसके रनिवास में विशेष मान था। चम्पतराय शाहजहां और दारा का विश्वासपात्र था। रानी सारन्धा की प्रेरणा से चम्पतराय अपने विलासी जीवन से मुक्ति पाता है और प्रजा धर्म का पालन कर बुन्देलखण्ड में स्वाधीन राजा की भांति राज्य करने लगा। कुछ समय पश्चात् शाहजहां के शाहजादों में राज्यगद्दी के लिए उत्तराधिकार का युद्ध होता है। दाराशिकोह की विशाल सेना ने औरंगजेब को चम्बल के उस पार ही रोके रखा। विवश होकर उसको चम्पतराय की शरण लेनी पड़ी। चम्पतराय ने औरंगजेब को शरण देना राजनैतिक दृष्टि से उचित नहीं समझा किन्तु रानी सारन्धा के यह कहने पर कि "राजपूत अपने शरणागत की रक्षा प्राणों की बाजी लगा कर भी करते हैं" चम्पतराय ने औरंगजेब को शरण ही नहीं दी, धरमट के युद्ध में भी भाग लिया, जिसमें दारा को परास्त कर औरंगजेब विजयी होता है और दिल्ली की राज्यगद्दी पर अधिकार प्राप्त करता है।

औरंगजेब ने चम्पतराय को उसके द्वारा की गयी मदद के उपलक्ष्य में पुरस्कार स्वरूप एक घोड़ा प्रदान किया। इस घोड़े को चम्पतराय की अनुपस्थिति में वली बहादुर नामक एक मुगल सेनापति छीन लेता ह। रानी ने इसे अपमान समझा और वली बहादुर से वह घोड़ा पुनः छीन कर अपने कब्जे में किया। औरंगजेब ने घोड़े को लेकर विवाद न करने की सलाह दी तब रानी सारन्धा ने कहलवाया—"यह घोड़े का प्रश्न नहीं, हमारे स्वाभिमान का प्रश्न है और मुझे मान प्रिय है।" अपने मान की रक्षा के लिए, एक घोड़े के खातिर अपनी जागीर मुगल बादशाह को वापिस लौटाकर सारन्धा अपने पति सहित बुन्देलखण्ड लौट आती है। औरंगजेब तो किसी प्रकार युद्ध का बहाना ढूंढ़ने की तलाश में ही था। रानी सारन्धा के उपकार को भूलकर कृतघ्न औरंगजेब ने ओरछा पर आक्रमण कर दिया। रानी सारन्धा ने पति सहित मुगलों का मुकाबला किया परन्तु पराजित हुई। अपनी मान रक्षा के लिए सारन्धा ने जागीर त्यागकर जंगल की खाक छानना स्वीकार किया पर अपने स्वाभिमान को आंच नहीं आने दी। छत्रसाल इसका पुत्र था।

सुपियारदे

सुपियारदे अमरकोट के सोढा सूरजमल राणा की पुत्री थी। रूपवती और गुणवती सुपियारदे का विवाह कोळू के पाबू राठौड़ के साथ सम्पन्न हुआ। पाबू राठौड़ की गणना राजस्थान के प्रमुख पांच लोक देवताओं में होती है। पाबू राठौड़ जब सोढी सुपियारदे से विवाह करने अमरकोट गया और अभी चंवरी में भांवरे भी पड़नी थी कि उस समय देवल चारणी की पुकार उसके पास पहुंची। जिंदराव खीची द्वारा देवल चारणी की गायें घेर ली गयीं, उसकी गायों को रक्षा के लिए पाबू राठौड़ वचनबद्ध था अतः अपने वचन पालन और गौ-रक्षा हेतु चंवरी की भांवरों को अधूरा छोड़, गठ-जोड़े को काट कर पाबू रवाना हो गया। जिस केसरिया बागा को पहन सोढी सुपियारदे से विवाह करने आया उसी बागे को पहन पाबू राठौड़ ने शत्रु दल की सेना से विवाह किया यानि उससे युद्ध करने को प्रस्थान किया—"राम कंवरी वरी जैंण वागं रसिक
धरी घड़' कंवारी तेंण वागं।"

सुपियारदे सोढी ने यौवन की देहली पर अभी पांव रखा ही था, उसके सुनहरे संसार का प्रारंभ भी नहीं हुआ था और पाणिग्रहण की मांगलिक बेला में पति चंवरी की भांवरें छोड़ कर प्रस्थान करने लगा उस समय उस वीर राजपूत नारी ने अपने कलेजे पर पत्थर रख दिया पर पति को कर्तव्य-पथ से विमुख नहीं किया। वह एक कायर पति की बजाय वीर की पत्नी कहलाने को इच्छुक थी अतः उसने निजी जीवन के सुखों का परित्याग कर दिया पर पति के कर्तव्य-पथ में बाधक नहीं बनी। एक और राजपूत नारी की भांति पाबू को अपने वचन-निर्वाह और गौ-रक्षा हेतु सुपियारदे विदा करती है। गायों की वाहर में पाबू वीरगति को प्राप्त होता है। सोढी उसकी पाग के साथ सती होती है।

नव परणीता सोढी सुपियारदे जिसने प्रणय सूत्र के उल्लासभरे मधुर और सुनहरे सपने संजोये पति का सुख प्राप्त करना तो दूर रहा चंवरी में बैठकर पूरे फेरे भी नहीं खाये वह अपने पति के साथ सती हो गयी। कितना अद्भुत! कितना पावन और कितना प्रेरणा दायी एवं मर्मस्पर्शी है, सोढी सुपियारदे का यह सतीरूप।

हंसाबाई

हंसाबाई मंडोर के राव चूंडा की पुत्री थी। राव रणमल जो चूंडा का पाटवी पुत्र था पर चूंडा ने अपनी गोहिल राणी के कारण छोटे पुत्र कान्हा को राज्य देना चाहा जिससे रणमल महाराणा लाखा (मेवाड़) में जाकर रहा। वहां महाराणा ने उसे चालीस गांव प्रदान किये। राव रणमल की बहिन हंसाबाई की सगाई का नारियल राणा लाखा के पुत्र चूंडा के लिए भेजा। उस समय लाखा ने हँसी में कह दिया "जवानों के नारियल आते हैं, हम जैसे बुढ्ढों के कौन भेजे!" पितृभक्त चूंडा ने पिता की विवाह की इच्छा देख यह रिश्ता लाखा से करवाया और स्वयं ने मेवाड़ की राज्यगद्दी का त्याग किया। चूंडा मेवाड़ की गद्दी का अधिकारी था पर हंसाबाई की शादी इस शर्त पर हुई कि उसका पुत्र मेवाड़ का स्वामी बनेगा।

हंसाबाई का विवाह महाराणा लाखा से हुआ। महाराणा लाखा के स्वर्गवास होने पर हंसाबाई सती होने लगी तो चूण्डा ने उसे रोका क्योंकि उस समय उसका पुत्र मोकल कम अवस्था में ही था। चूण्डा ने पिता को दिये वचन के अनुसार मोकल को मेवाड़ का स्वामी बनाया और हंसाबाई को राजमाता। चित्तौड़ में राठोड़ रणमल धीरे-धीरे अपना वर्चस्व स्थापित करने लगा। महाराणा मोकल की चाचा और मेरा ने हत्या कर दी। राव रणमल द्वारा मेवाड़ में बढ़ रहा राठोड़ वर्चस्व अखरा और उसकी भी हत्या कर दी गयी। उसके पुत्र जोधा ने वहां से भागकर अपने प्राण बचाये।

मोकल की मृत्यु के पश्चात् कुम्भा मेवाड़ का शासक हुआ। इधर जोधा लगातार कई वर्षों से मंडोर पर अपना आधिपत्य स्थापित करने की कोशिश करता रहा। अपने भतीजे की इस स्थिति से हंसाबाई का मन पसीजा और उन्होंने अपने पौत्र कुम्भा को एक दिन कहा—"मेरा विवाह चित्तौड़ में होने के बाद राठोड़ों को हर प्रकार से हानि ही उठानी पड़ी है। मोकल की हत्या करने वाले हत्यारों को रणमल ने मारा और हर प्रकार से मेवाड़ की सेवा करने वाले मेरे भाई की भी हत्या हुई और अब उसका पुत्र राज्यविहीन होकर भटक रहा है।" कुम्भा की सहमति प्राप्त करने के पश्चात् हंसाबाई ने आशिया डूला के साथ जोधा को मंडोर पर अधिकार करने का संदेश भेजा। जोधा ने मंडोर पर अधिकार किया और हंसाबाई के सहयोग से राठौड़ राज्य को मारवाड़ में स्थायित्व प्रदान किया।

लिखमां दे

लिखमां दे जैसलमेर के कलिकर्ण भाटी की पुत्री और हरभू सांखला की दोहिती थी। लिखमां का जन्म उसके ननिहाल बेंहगटी में हुआ। मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण लिखमां का परित्याग कर दिया गया। संयोगवश हरभू सांखला, जो फलौदी गया हुआ था, वापस अपने गांव लौट रहा था। उसने सुनसान जंगल में बच्चे के रोने की आवाज सुनी। पास जाकर देखा तो एक कन्या रो रही थी, वह उसे घर उठा लाया। घर वालों ने उस परित्यक्त कन्या को पहचान लिया और हरभू से कहा इसे तो जंगल में छोड़ दिया था, वापस उठाकर क्यों लाये, यह बुरे नक्षत्र में पैदा हुई है। हरभू ने कहा "कोई चिन्ता की बात नहीं। यह मूल नक्षत्र में भले ही पैदा हुई हो यह आगे चलकर ससुराल और पीहर दोनों कुलो का मान बढ़ाने वाली बड़ी भाग्यशाली होगी।" हरभू सांखला स्वयं बहुत बड़ा शकुनी (भविष्य वक्ता) था, उसकी गणना राजस्थान के प्रमुख लोक-देवताओं में होती है। हरभू की बात परिवार वालों ने मान ली। उसी रात हरभू सांखला के स्वयं के पुत्री उत्पन्न हुई। दोनों मासी भाणजी समान लाडप्यार में पलकर बड़ी हुई।

विवाह योग्य होने पर हरभू ने लिखमां दे का सम्बन्ध पोकरण के शासक खींवसी से करने हेतु ब्राह्मण के साथ नारेल भेजा। खींवसी ने दुल्हन के दांत बड़े बताकर इस रिश्ते को स्वीकार नहीं किया पर कहा कि यदि हरभूजी अपनी पुत्री की शादी करें तो उसके साथ विवाह किया जा सकता है। ब्राह्मण ने आकर वापिस हरभू सांखला को यह बात बतायी। हरभू यह सुनकर बड़ा दुखी हुआ, सोचा क्या किया जाय, जिसके पुत्री पैदा होती है उसका जन्म बेकार हो जाता है। हरभू ने खींवसी की इच्छानुसार अपनी पुत्री का विवाह उससे कर दिया और इस प्रकार लिखमां दे कुंवारी रह गयी। जगह जगह उसके सम्बन्ध (सगाई) का प्रयास किया गया पर उससे कोई विवाह करने को राजी ही नहीं था। खीवसी पोकरण द्वारा उसकी निन्दा करने के कारण सभी जगह से उसके नारेल वापिस लौटकर आते।

संयोग की बात राव सातल, जो जोधपुर का शासक था, उसका

छोटा भाई सूजा शिकार खेलता हुआ बैंहगटी आया, उस समय हरभू सांखला ने अपनी दोहिती लिखमा का विवाह सूजा से किया। राव सातल के कोई पुत्र न होने के कारण उसकी मृत्यु के पश्चात् सूजा जोधपुर का शासक बना और लिखमां दे पटरानी, लिखमां दे के बाघा और नरा नामक दो वीर पुत्र हुये। बाघा बगडी पर और नरा फलोदी में रहता था। नरा के पास ही उसकी मां लिखमा दे रहती थी।

बरसात के दिन थे। एक दिन शाम को नरा अपनी मां के पास बैठकर भोजन कर रहा था,उस समय उसके नौकर ने आकाश में उमड़े बादलों की घटा की तरफ देखते हुए कहा—"आज तो पोकरण पर बिजली चमक रही है।" यह सुनकर लिखमां ने निःस्वास छोड़ा तो नरा ने कहा "मां! तेरे नरा और बाधा जैसे पुत्र और जोधपुर के राव सूजा जैसे पति है फिर क्या दुख है? यह निःस्वास कैसे छोड़ा? मुझे अपने मन की पीड़ा शीघ्र बता।" पहले तो लिखमां दे ने टालने की कोशिश की पर नरा के आग्रह करने पर उसे बताते हुए कहा—बेटे! तुम्हे पता नही पोकरण वालों ने मेरी निन्दा की थी। शादी के बाद ही किसी दुल्हन को अमान्य किया जाता है परन्तु खींवसी ने जब मैं कुंवारी थी उस समय अमान्य कर मेरी बेइज्जती की, मुझे बदसूरत व बड़ी दांतों वाली बताकर मेरी हंसी उड़ाई। अकारण ही उसकी वजह से मुझे बहुत दिनों तक दुख व क्लेश उठाना पड़ा। मेरी अपकीर्ति हुई। इसीलिए पोकरण का नाम आते ही मेरे हृदय में क्रोधाग्नि भड़क उठती है। अपना अपमान करने वाले को मैं दण्डित नहीं कर सकी, इस बात का मुझे बड़ा दुःख है।

अपनी मां की यह दर्दीली दास्तान सुनकर नरा ने कहा—"मां! तुम चिन्ता मत करो, इतने दिन पहले तुमने यह बात क्यों नहीं बतायी, तुम्हारे अपमानकर्ता को कभी का दण्ड दे चुके होते।" नरा ने अपनी मां का अपमान करने वाले पोकरण के खीवसी पर आक्रमण कर उससे पोकरण का राज्य छीना। खीवसी क परिवार सहित पोकरण छोड़ने पर मजबूर किया। नारी का अपमान करने वाले खीवसी को राज्य-च्युत कर स्वाभिमानी और साहसी महिला लिखमां दे ने प्रतिशोध (बदला) लिया।

भगवती

बिहार में गंगा के किनारे बसे एक गांव के ठाकुर होरलसिंह की बहिन भगवती बहुत सुन्दर थी। भगवती एक दिन गंगा घाट पर नहा रही थी। नौका विहार कर रहे मुस्लिम सूबेदार मिर्जा ने घाट पर नहाती हुई भगवती को देखा तो वह उसके अतुलित सौन्दर्य पर मुग्ध हो गया। मिर्जा उसे अपनी बेगम बनाना चाहता था। मिर्जा ने अपने सिपाही भेजकर ठाकुर होरलसिंह को बुलाया और उसके सम्मुख प्रस्ताव रखा कि "तुम्हारी रूपवती बहिन भगवती तो हमारी बेगम बनने लायक है। यह हमारे हरम की शोभा बढायेगी. तुम उसे हमें सौंप दो। इसके बदले हम तुम्हें बहुत-सा धन और जागीर प्रदान करेंगे।" मिर्जा की यह बात स्वाभिमानी ठाकुर हरोलसिंह कब मानने वाला था। ज्यों ही उसका हाथ तलवार की मूठ पर गया मिर्जा के सैनिकों ने उसे पीछे से पकड़ कर बन्दी बना लिया।

होरलसिंह की पत्नी को अपने पति को बन्दी बनाये जाने की सूचना मिली तो वह अपनी ननद भगवती के रूप को कोसने लगी और उसे जली कटी सुनाने लगी। वह भगवती के सौन्दर्य को ही भाई के कष्ट और संकट का कारण मानकर अपने पति की चिन्ता करने लगी तब भगवती ने उसे आश्वस्त करते हुए कहा—"चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं भाभी! मैं अभी अपने भैया को छुड़ाती हूं।" भगवती सीधी घाट पर मिर्जा के पास पहुंची और कहा-"मिर्जा साहब, मेरे लिए यह सौभाग्य की बात है कि मैं आपकी बेगम होने जा रही हूं। आप मेरे भैया को छोड़ दीजिये। मेरे लिए सुन्दर कपड़े और गहने मंगवाइये। आपकी बनने वाली बेगम बड़ी सजधज और शान शौकत से पालकी में बैठकर चलेगी।" मिर्जा बहुत खुश हुए। होरलसिंह को छोड़ दिया गया। जेवर व कपड़ों की शीघ्र व्यवस्था की गयी। पालकी में बैठ भगवती रवाना हुई। रास्ते में एक सरोवर आया तो उसके समीप पानी पीने हेतु पालकी रुकवाई। अन्य लोग पानी लेने दौड़े तो उन्हें रोकते हुए भगवती ने कहा—"अभी मेरा निकाह नहीं हुआ है। निकाह होने तक मैं किसी के हाथ का छुआ पानी नहीं पीऊंगी।" और वह स्वयं अकेली पालकी से उतर पानी पीने के बहाने सरोवर पर गयी। कुमारी भगवती ने अपने धर्म और शील की रक्षा हेतु सरोवर में कूदकर प्राण त्याग दिये। इस वीर नारी को बेगम बनाने के ख्वाब देखने वाले मिर्जा मुंह लटकाये रह गये।

नीलदेवी

नीलदेवी नूरपुर (पंजाब) के राजा सूरजदेव की रानी, संगीत और नृत्य विद्या में पारंगत थी। अब्दुलशरीफ खां नामक आक्रान्ता ने नूरपुर पर आक्रमण किया। राजा सूरजदेव ने उसका दृढ़ता से मुकाबला किया। उसे जब सफलता नहीं मिली तो संधि करने के बहाने बुलाकर राजा सूरजदेव को कैद कर पिंजरे में डाल दिया और राजकुमार सोमदेव को संदेश भेजा कि "नूरपुर का राज्य मेरे हवाले कर दो वरना तुम्हारे पिता के शरीर की बोटी-बोटी अलग कर दी जायेगी।"

इस समाचार से राजपूतों में हलचल मच गयी। सोमदेव ने पिता को मुक्त कराने हेतु युद्ध को अन्तिम उपाय बताया और इसके लिए तैयार हुआ परन्तु उसकी माता ने उसे रोका और कहा--"दुष्ट को दुष्टता से ही निपटना ठीक रहता है।" नीलदेवी ने एक तरकीब सोची। वह नृत्यांगना (नाचने वाली) का भेष धारण कर साजिन्दों के भेष में चार राजपूत सैनिकों को लेकर अशरफ खां के खेमे में पहुंची। अशरफ खां महफिल जमाकर मदिरापान कर रहा था, ऐसे अवसर पर नृत्यांगना का आगमन उसे भला लगा। रानी नीलदेवी के नृत्य और संगीत से अशरफ और उसके अंगरक्षक मदमस्त हो कर प्याले पर प्याला शराब का ढाले जा रहे थे, पास ही पिंजरे में कैद राजा सूरजदेव यह सब देखकर हैरान था। उसे अपनी रानी के पतिव्रत धर्म पर सन्देह हुआ। नाच समाप्त होने पर ज्योंही अशरफ खां कामुक हो उसे इनाम देने को झूमता हुआ आगे बढ़ा नीलदेवी ने चोली में छिपायी कटार निकालकर उसके सीने में भोंक दी। नील-देवी का संकेत पाते ही साजिन्दों के भेष में आये राजपूत सैनिक भी संभल गये और शीघ्र ही राजा सूरजदेव को पिंजरे से बाहर निकाल कैद मुक्त किया। दुश्मन के खेमे में खलबली मच गयी। उधर सोम-देव ने भी उस पर धावा बोल दिया। रानी नीलदेवी पति के साथ अशरफ के खेमे से बाहर निकलने ही वाली थी कि राजा सूरजदेव पर एक शत्रु सैनिक ने पीछे से वार कर उनकी हत्या कर डाली। युद्ध में सोमदेव विजयी हुआ। नीलदेवी ने पुत्र को राज्य तिलक किया और स्वयं पतिव्रत धर्म का पालन करते हुए अपने पति के साथ सती हुई।

अजबदे पंवार

अजबदे स्वतन्त्रता प्रेमी, स्वाभिमानी वीरवर महाराणा प्रताप की रानी थी। तत्कालीन अन्य रियासतों के राजा महाराजा मुगल बादशाह अकबर की अधीनता स्वीकार कर आराम की जिन्दगी बिता रहे थे परन्तु प्रताप ने अभी तक मुगल सम्राट् को अपना शीश नहीं झुकाया था। हल्दी घाटी में अद्भुत शौर्य का प्रदर्शन करने वाला यह वीर अपने आन मान पर दृढ़ था। मुगलों से निरन्तर आठ वर्ष तक संघर्ष करते रहने के कारण महाराणा प्रताप की सैनिक शक्ति धीरे-धीरे कम होती जा रही थी, ऐसी स्थिति में दुर्ग के भीतर रहकर सशक्त शत्रु का अधिक समय तक डटकर मुकाबला करना संभव नहीं था, अतः राणा प्रताप की वीर पत्नी अजबदे पंवार ने राजमहलों का परित्याग कर जगल में आश्रय लेने का सुझाव अपने पति को दिया। राणा प्रताप को अपनी पत्नी अजबदे पंवार का यह समयोचित सुझाव अच्छा लगा और अपने परिवार के सदस्यों, प्रमुख सामन्तों व विश्वासपात्र सैनिकों के साथ जगल में प्रस्थान किया।

राणा प्रताप अपनी कोमलांगी रानी द्वारा जंगल में प्रश्रय लेने के स्वैच्छिक विचार से एक बार तो हिचकिचाये और सकुचाते हुए अजबदे की ओर देखते हुए मन में यह विचार किया कि यह जंगल के बीहड़ रास्तों पर कैसे चल पायेगी? कैसे यह वन्य जीवन के कष्टों को झेलेगी? राणा प्रताप ने अभी अपने विचार वाणी द्वारा अभिव्यक्त भी नही किये थे कि अजबदे ने महाराणा की हिचकिचाहट और सकोच को भांप लिया और कहा—"जंगल की शरण लेने में संकोच कैसा। राजा राम को भी चौदह वर्ष तक वनवास भोगना पड़ा और पांडव भी बारह वर्ष तक जंगल में भटकते रहे। हम ही कोई पहली बार ऐसा थोड़े ही कर रहे हैं, ऐसे कष्ट तो हमारे पूर्वजों ने सहे हैं। ये कष्ट तो सच्चे राजपूत की कसौटी है।" अपनी जीवन संगिनी के ऐसे विचारों से राणा प्रताप प्रभावित हुए और संकोच छोड़ वन को चल दिये।

स्वाधीनता प्रेमी उस महान् वीर का साहस जहां डगमगाने लगता, धैर्य का बांध टूटने लगता, उस समय वीर हृदया अजबदे पंवार ही अपने पति प्रताप को आश्वस्त कर उसमें आत्मबल का संचार करती। इसी कारण प्रतापी प्रताप वर्षों तक कष्ट सहने के बाद भी स्वाधीनता की मशाल को सदा थामे रहे, उसकी ज्योति मंद

नहीं होने दी। पच्चीस वर्ष तक शक्तिशाली मुगल सम्राट् से टक्कर लेने वाले राणा प्रताप का मनोबल बढ़ाने में अजबदे की महत्वपूर्ण भूमिका रही और अपने पति के स्वाधीनता के प्रण को पूरा करने के लिए राज वैभव का सुख ही नहीं त्यागा कठिन से कठिन घड़ी में भी हर पल साये की भांति साथ रहकर दुख बांटा। रानी अजबदे पंवार दुख को सदा रहने वाली वस्तु नहीं मानती थी और फिर उससे अधिक तो उसे मर्यादा और धर्म की रक्षा करने में गौरव का अनुभव होता था।

एक बार जंगल में राजकुमार अमरसिंह के हाथ से घास की बनी रोटी जब बन विलाव छीन कर भाग जाता है और भूख से दुखी हो वह रोने लगता है तो पिता प्रताप का पत्थर दिल भी हिल जाता है। "वर्षो कष्ट सहने के बाद भी मेवाड़ का राजकुमार एक रोटी के टुकड़े का मोहताज हो, ऐसी स्वाधीनता किस काम की ?" जब ऐसे विचार के भावावेग में वह अकबर को संधि बाबत पत्र लिखने को तत्पर होता है तो इसकी खबर पाते ही अजबदे पंवार को बहुत दुख हुआ। पति को वह समझाती है कि "हे प्राणनाथ ! तुर्क की अधीनता में हमको फूल भी शूल लगेंगे। आप हमारे कष्टों से विचलित न हों। आपके हृदय में ऐसा अविचार लाना, आपकी बहुत बड़ी भूल है।" वह अपने पति को प्राचीन प्रसंगों का स्मरण करवाती हुई उसे अपने प्रण पर दृढ़ रहने को प्रोत्साहित करती है। उसका वर्णन कवि के शब्दों में इस प्रकार है—

सीता महारानी कहा कानन तें लौटि आइ,
मैय्या हरिचन्द्र साथ विपति कहा गिरी।
निद्रावश नल को बिछोरि कहां भाग गई,
रानी दमयंती कहा भई अध गामिनी।
धर्म हेत कष्ट सहि जानत तिया न कहा
करि वे सुलह यात ताहि तें प्रभु मानी।
समता न पाऊं उन देवियों के साथ तोऊ,
प्राणनाथ ! रावरी कहाऊं अरधांगिनी।

इस प्रकार अजबदे ने क्षत्रिय अर्द्धांगिनी धर्म का पालन करते हुए कर्त्तव्यच्युत होते पति को सही दिशा बता उसकी कीर्ति को अमर बनाया।

राजबाई

वढ़वाण (काटियावाड़) की राज्य संचालिका रानी राजबाई बड़ी वीर, साहसी और स्वाभिमानी महिला थी। वढ़वाण में उन दिनों स्त्रियां ही राज्याधिकारिणी होती थी अतः युद्ध कला प्रवीण एवं नीति निपुण रानी राजबाई पति व पुत्र के होते हुए भी राज्य-सिंहासन की अधिकारिणी बनी। बहुत ही कुशलता के साथ राज-बाई ने राज्य प्रशासन किया। सत्तर वर्ष की अवस्था में राजबाई ने तीर्थयात्रा का विचार किया। अपनी पुत्रवधू गोवलबाई को राज्य की कार्यवाहक संचालिका घोषित कर तीर्थाटन के लिए निकली।

गोवलबाई सुयोग्य नारी थी परन्तु राज्याधिकार हाथ मे आने पर उसे सत्ता का मोह जागृत हुआ और उसने अपनी सास राजबाई की भांति शासिका बनने का निश्चय कर लिया। लोभ और मोह क्या नही करवा लेता। गोवलबाई राज्यलोभ और उसके मद में विवेकहीन हो शासिका बनने की उतावली हुई। रानी राजबाई जब तीर्थयात्रा से लौटी तो गोवलबाई ने अपनी सास को नगर के बाहर ही रोक लिया और कहलवाया—"आप अब बहुत वृद्ध हो चुकी हैं। राजकार्य की उलझनों में फंसकर चिन्तित रहने की बजाय किसी शान्त और एकान्त जगह में जाकर भजन किर्तन कर अपना शेष जीवन बितायें।"

रानी राजबाई हालांकि सत्तर वर्ष की वृद्धा हो चुकी थी और भजन-कीर्तन मे ही अपना शेष जीवन बिताने की इच्छुक थी किन्तु अपनी पुत्र-वधू द्वारा तीर्थयात्रा से लौटने पर नगर द्वार बन्द कर उसके नगर प्रवेश पर जो रोक लगा दी उसे राजबाई ने अपना अप-मान समझा। राजपूत महिला सब कुछ सहन कर सकती है किन्तु अपना अपमान सहन नही कर सकती। वृद्धा राजबाई का चेहरा पुत्र वधू के इस सदेश से तमतमा गया। प्रतिशोध लेने हेतु राजबाई ने अपनी सेना गठित की। सत्तर वर्ष की आयु में भी घोड़े की पीठ पर बैठकर नंगी तलवार हाथ में लिए उस वीरांगना ने स्वयं सेना का नेतृत्व संभाला तथा वढ़वाण दुर्ग पर आक्रमण किया। राजबाई के उत्साह, हिम्मत व शौर्य से प्रभावित हुये सैनिकों ने पहले ही धावे में दुर्ग पर अधिकार कर लिया। गोवलबाई को परास्त कर राजबाई ने पुनः अपने राज्य पर—अधिकार स्थापित किया तथा अपने अपमान का बदला लिया।

विद्युल्लता

विद्युल्लता चित्तौड़ के एक वीर राजपूत सैनिक की कन्या थी। चित्तौड़ के ही समरसिंह नामक एक युवक से उसका सम्बन्ध तय हुआ। अभी इनका विवाह संस्कार सम्पन्न नहीं हुआ था इस बीच अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। रण रंग में उन्मत्त वीर राजपूत सैनिक अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए यवनों से संघर्ष कर रहे थे। ऐसी संकट की घड़ी में अपने कर्त्तव्य पथ से विमुख होकर अपनी मगेतर विद्युल्लता से आकर समरसिंह ने कहा- "प्रिये! मैं युद्ध से पलायन कर तुम्हें यहां से दूर ले चलने के लिए आया हूं। तुम शीघ्र मेरे साथ चलो। शायद तुम्हें यह ज्ञात नहीं कि यहां तो सब कुछ समराग्नि में भस्म हो जायेगा। मैं तुम्हारी प्रीत-पगी अंखियों की पलकों की छांव में आनन्द से जीवन बिताना चाहता हूँ।"

यह बात सुनते ही वीरबाला विद्युल्लता की क्रोधाग्नि भड़क उठी, उसने समरसिंह के कायरतापूर्ण प्रस्ताव को नामंजूर कर दृढ़ता से कहा—"प्रेम से भी कर्त्तव्य ऊंचा है। देश पर संकट है और तुम अपने जीवन के मधुर सपनों के जाल बुन रहे हो। इस समय देश की रक्षा का प्रश्न प्रमुख है, ऐसी स्थिति में सांसारिक सुख की कामना कायरता है। युद्ध भूमि में प्राण त्यागने वाले वीरों को राजपूत बालायें वरण करती हैं। समर! तुम्हारे जैसे वीर राजपूत को ये शब्द शोभा नहीं देते। युद्ध भूमि में जाकर शत्रुदल का संहार करो यही तुम्हारा कर्त्तव्य है। यदि देश रक्षा हित तुम वीरगति भी प्राप्त कर लोगे तो मुझे गर्व होगा, मुझे अपना धर्म भी ज्ञात है।"

समरसिंह जिसने अपने निजी सुख की प्राप्ति के लिए यवनों को भेद बता कर अपनी तथा अपनी प्रेयसी विद्युल्लता की जान बचाने का उपक्रम बनाया था। उस पर विद्युल्लता के शब्दों का असर कब होने वाला था। यवन सैनिकों की उपस्थिति में बंधन मुक्त खड़े समरसिंह को देख विद्युल्लता को यह ज्ञात होते देर नही लगी कि उसने विश्वासघात किया है। समरसिंह शीघ्र भाग निकलने के लिए उसका हाथ थामने आगे बढ़ता है। "खबरदार! विश्वासघाती!! देशद्रोही!!! तुमने जो मेरे शरीर को छूकर अपवित्र करने की कोशिश की तो। ऐसे कायर और कुलकलंक की अर्द्धांगिनी बनने से मुझे मृत्यु अधिक प्रिय है।" समरसिंह उसके पास पहुंचता उससे पूर्व अपने ही हाथों छाती में कटार भोंक विद्युल्लता ने अपनी जीवन लीला समाप्त कर दी।

रानी लक्ष्मीबाई

लक्ष्मीबाई मोरोपन्त ताम्बे की पुत्री थी। इसका बचपन का नाम मन्नूबाई था। मन्नूबाई का बचपन बिठूर में बीता। घुड़सवारी व अस्त्र संचालन की शिक्षा मन्नूबाई को बचपन से ही मिली और उसने इसमें प्रवीणता हासिल की। निडर, साहसी, युद्धकला में निपुण आत्मविश्वास की धनी यही मन्नूबाई आगे चलकर झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई के नाम से इतिहास में प्रसिद्ध हुई। वीरता की प्रतिमूर्ति इस आधुनिक दुर्गावती का विवाह झांसी के राजा गंगाधर राव के साथ सम्पन्न हुआ। अभी उसने दाम्पत्य सुख का पूरा उपभोग भी नहीं किया था कि उसके भाग्य पर बिजली गिरी, उसके पति राजा गंगाधर राव का आकस्मिक निधन हो गया।

राजा गंगाधर राव के कोई पुत्र न था। निःसंतान झांसी की रानी लक्ष्मीबाई ने आनन्दराव दामोदर नामक बालक को गोद लिया। रानी द्वारा पुत्र को गोद लेना तत्कालीन अंग्रेज सरकार ने वैध न माना। लार्ड डलहौजी की हिन्दुस्तान के स्वतंत्र राज्यों को हड़पने की नीति थी। झांसी की रानी भी इस नीति की शिकार हुई। रानी के गोद लेने की प्रार्थना अस्वीकार कर झांसी को अंग्रेजी राज्य में मिला दिया गया। लक्ष्मीबाई व उसके दत्तक पुत्र के जीवन निर्वाह हेतु पेन्शन नियत कर दी।

अंग्रेजों की इस नीति के परिणाम स्वरूप भारत के देशी राज्यों के शासकों में अन्दर ही अन्दर एक विरोध दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा था। नाना साहब, तांत्या टोपे, कुंवरसिंह और अन्तिम मुगल सम्राट बहादुरशाह जफर के नेतृत्व में चुपचाप एक बगावत की तैयारी हो रही थी। अंग्रेजों द्वारा सतायी हुयी झांसी की रानी भी इस संगठन के साथ जुड़ गयी।

नाना साहब, तांत्या टोपे, झांसी की रानी लक्ष्मीबाई, कुंवरसिंह, बहादुरशाह इत्यादि प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानियों की गुप्त मंत्रणाओं के परिणाम स्वरूप भारतीयों में चेतना जागृत हुई। अंग्रेजों के विरुद्ध असन्तोष बढ़ने लगा। विद्रोह की आग भड़कने में अब केवल बारूद पर आग रखने भर की देरी थी। देश की अधिकांश जनता फिरंगियों को यहां से निकालकर पुनः अपना स्वराज्य स्थापित करने के पक्ष में थी।

अंग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की भावना को बढ़ाने तथा लोगों में देशप्रेम और स्वातन्त्र्य प्रेम की भावना को प्रबल बनाने में झांसी की रानी लक्ष्मीबाई की प्रमुख भूमिका रही। उसकी सक्रियता से अंग्रेज सरकार भी बेखबर नहीं थी किन्तु स्थिति के विस्फोटक हो जाने से भय से अंग्रेज खुले रूप से आक्रमण करने की हिम्मत नहीं कर पा रहे थे। वे उपयुक्त अवसर की तलाश में थे। संयोगवश वह अवसर भी अंग्रेजों के हाथ लग गया। अंग्रेजों का कृपापात्र खानदेश का सदाशिव नारायण तथा नत्थेखां ने झांसी पर आधिपत्य स्थापित करने के लिए आक्रमण किया, उसका घेरा डाला पर सफलता नहीं मिली तो अंग्रेजों से सहायता मांगी। अंग्रेजी सेना सर ह्यूज के नेतृत्व में शीघ्र उनकी मदद को आ गयी। सर ह्यूज ने झांसी की रानी को आत्मसमर्पण करने की बात लिखी।

झांसी की रानी लक्ष्मीबाई जो अब तक शान्त और चुपचाप बैठी थी, अंग्रेजों की इस चाल और कपटपूर्ण व्यवहार से अत्यन्त क्रुद्ध हो उठी। पति की मृत्यु के पश्चात् उसने एक हिन्दू विधवा नारी की भांति अपना जीवन भक्तिभाव से व संयम से बिताना प्रारंभ कर दिया था पर आत्मसमर्पण जैसा अपमान वह वीर नारी कैसे सहन कर सकती थी। उस वीरांगना ने अंग्रेजों के विरुद्ध खुले आम विद्रोह की घोषणा कर दी—"झांसी मेरी है और अपने जीते-जी इस पर किसी को अधिकार नहीं करने दूंगी।"

रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया। कुछ समय तक किले के भीतर रहकर अंग्रेजों को मुंह तोड़ जवाब दिया और जब अंग्रेजी तोपों से किला ध्वस्त हो गया तो युद्ध के मैदान में अंग्रेजी सेना के छक्के छुड़ा दिये। उत्तर भारत के प्रमुख स्वतन्त्रता सेनानियों की कालपी में बैठक होने वाली थी उसमें पहुंचने हेतु लक्ष्मीबाई ने चौबीस घण्टे में घोड़े की पीठ पर बैठकर एक सौ दो मील का लम्बा सफर तय किया। कालपी पर अंग्रेजों का अधिकार हुआ तो रानी ने ग्वालियर पर अधिकार किया पर वहां का दीवान अंग्रेजों से मिल गया। ऐसी स्थिति में रानी ने अन्तिम संग्राम की तैयारी की और जब तक उसके तन में प्राण और हाथ में तलवार रही उसने शत्रुदल का संहार कर अपनी कीर्ति को सदा के लिए अमर बना दिया।

बजरंग दे

राजस्थान के मारवाड़ राज्य में आलणियावास ग्राम के ठाकुर विजयसिंह की धर्मपत्नी बजरंग दे कछवाही बड़ी वीर राजपूत महिला थी। यह उस समय की बात है जब दिल्ली पर मुगल बादशाह औरंगजेब राज्य कर रहा था। जोधपुर के महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम की मृत्यु के पश्चात् मारवाड़ पर मुगल आधिपत्य स्थापित हो गया था। दुर्गादास राठौड़ महाराजा जसवन्तसिंह प्रथम के नाबालिग पुत्र अजीतसिंह की रक्षा और मारवाड़ राज्य की स्वतन्त्रता के कार्य में जुटा हुआ था।

वीरांगना बजरंग दे कछवाही उस युग में भी मुगल आतंक से नहीं घबरायी और अपने पति ठाकुर विजयसिंह की मृत्यु के पश्चात् ठिकाने का सारा भार अपने कंधों पर ले लिया। बजरंग दे मर्दानी पोशाक धारण कर ठिकाने का सारा काम स्वयं देखती थी। घोड़े पर सवारी करना और शस्त्र चलाने में भी वह प्रवीण थी। आलणियावास ठिकाने की बड़ी सतर्कता से चौकसी और राज-काज सम्बन्धी सारे कार्य कुशलता से संचालित कर अपनी योग्यता की धाक जमा चुकी थी।

बजरंग दे बहुत ही स्वाभिमानी राजपूत नारी थी। उसने अपने पति की मृत्यु के पश्चात् आलणियावास ठिकाने की रेख (एक प्रकार का टेक्स, कर) चाकरी भरना बन्द कर दिया। अजीतसिंह जब मारवाड़ का शासक बना उस समय भी दुर्गादास राठौड़ उसके राज्य को स्थायित्व प्रदान करने में पूर्ण निष्ठा के साथ लगा हुआ था। स्वामीभक्त दुर्गादास ने राज्य की आमदनी में वृद्धि हेतु आलणियावास ठिकाने की बन्द रेख को फिर से प्रारम्भ कराने का प्रयास किया। इस सम्बन्ध में बजरंग दे को लिखा गया पर उसने रेख भरने से साफ इन्कार कर दिया। दुर्गादास ने उसे भयाक्रान्त करने हेतु सैन्यशक्ति का उपयोग किया पर बजरग दे कब पीछे हटने वाली थी। रोयां की नदी में दुर्गादास की सेना से मुकाबला करने वह युद्ध के मैदान में कूद पड़ी। उसके शौर्य और कुशल सैन्य सचालन के कारण दुर्गादास जैसे वीर को भी पीछे हटना पड़ा "दोय कोम दोरी दुरगेस"। ठकुरानी बजरंग दे की विजय हुई।

अहल्याबाई

अहल्याबाई आनन्दराव सिंधिया (मनकोजी) की होनहार पुत्री थी। नीति निपुण, धर्मज्ञ व न्यायप्रिय तथा शीलवती अहल्याबाई विभिन्न गुणों से सम्पन्न थी। इसका विवाह मल्हारराव होल्कर के पुत्र खांडेराव के साथ हुआ। खांडेराव इन्दौर का शासक था और अहल्याबाई इन्दौर की महारानी बनी। गुणसम्पन्ना अहल्याबाई अपने नित्यकार्य के अतिरिक्त राज्य प्रवन्ध के कार्यों में भी अपने पति को पूर्ण सहयोग प्रदान करती थी। अभी उसके दाम्पत्य जीवन के केवल नौ वर्ष ही बीते थे कि खांडेराव का स्वर्गवास हो गया। उसने पति के साथ सती होना चाहा पर सास श्वसुर ने अपने दो छोटे बच्चों (एक पुत्र व एक पुत्री) के पालन हेतु उसे ऐसा करने से रोका। विधवा होने के समय अहल्याबाई की अवस्था केवल बीस या बाईस वर्ष की ही थी पर इसकी वीरता और कार्य दक्षता पर उसके श्वसुर मल्हारराव होल्कर को पूरा भरोसा था। सन् 1761 में पानीपत के युद्ध के पश्चात् मल्हारराव ने इन्दौर का राज्य-प्रबन्ध पूरी तरह अपनी पुत्रवधू अहल्याबाई को ही सौंप दिया।

मल्हारराव की मृत्यु के पश्चात् अहल्याबाई का पुत्र मालेराव इन्दौर का शासक हुआ और अहल्याबाई राजमहिषी। मालेराव राजमहिषी अहल्याबाई की शालीनता और सद्व्यवहार के बिलकुल विपरीत स्वभाव का था। मालेराव अधिक समय तक जीवित नहीं रहा, उसके पश्चात् अहल्याबाई ने ही इन्दौर राज्य का शासन प्रबंध अपने हाथ में लिया। अहल्याबाई द्वारा शासन की बागडोर हाथ में लिये जाने का सबसे अधिक विरोध मल्हारराव के मुख्यमन्त्री गंगाधर यशवन्त ने किया। गंगाधर यशवन्त का कहना था कि विधवा अहल्याबाई के स्थान पर कुल में से किसी को गोद लेकर राज्यगद्दी पर बिठाया जाय। अहल्याबाई ने गंगाधर यशवंत के उस प्रस्ताव को यह कहकर अमान्य कर दिया कि "मैं राज्यगद्दी के दो अधिकारियों की रिश्तेदार हूं—एक की पत्नी और दूसरे की माता। मुझे राज्य प्रवन्ध का अनुभव है, मुझे किसी को गोद लेने की आवश्यकता नहीं, मैं स्वयं राज्य प्रबंध करूंगी।"

असन्तुष्ट गंगाधर यशवंत ने पेशवा के सेनापति रघुनाथराव को भड़काकर इन्दौर से अहल्याबाई को निकालकर उसका राज्य हड़पने की योजना बनाई। अहल्याबाई इससे भयभीत नहीं हुई। इन्दौर की राजमहिषी ने गायकवाड़ और भौसले की सहायता प्राप्त कर पेशवा के सेनापति से युद्ध करने आ डटी। अहल्याबाई को अबला समझकर रघुनाथराव ने इन्दौर पर आक्रमण की योजना बनायी थी। जब उस वीरांगना को प्रतिरोध के लिए उपस्थित देखा तो राजमहिषी अहल्याबाई को यह सदेश भेजकर लौट गया कि "मैं तो केवल यह देखना चाहता था कि शत्रु से तुम अपनी रक्षा करने में सक्षम भी हो या नहीं।" अहल्याबाई इन्दौर की शासिका बनी। उसने गंगाधर यशवंत को भी माफ कर अपनी क्षमाशीलता का परिचय दिया।

सद्गुण सम्पन्न इस वीर नारी ने बहुत ही योग्यता से लगभग 30 वर्ष तक इन्दौर राज्य का संचालन किया। उसके राज्य में चारों ओर अमन चैन था। राज्य की आर्थिक स्थिति भी सुदृढ़ थी। खजाने में करोड़ों रुपये जमा थे और दान-धर्म तथा पुण्य कार्यों में भी उसने बहुत-सी राशि खर्च की। धर्म में उसकी गहरी आस्था थी। हिंदुस्तान के प्रसिद्ध तीर्थ स्थानों जैसे रामेश्वरम्, केदारनाथ, काशी, प्रयाग, जगन्नाथ, द्वारका आदि में मन्दिर बनवाकर वहां सदाव्रत बांटना प्रारम्भ करवाया। राज्य की सुरक्षा की दृष्टि से जहां उसने विभिन्न गढ़ कोट इत्यादि बनवाये वहीं सार्वजनिक हित के लिए सड़कें, कुएं, बावड़िया व धर्मशालाएँ बनवायीं। विभिन्न कष्टों का दृढ़ता से मुकाबला करते हुए महारानी अहल्याबाई ने जन-हित और देश-हित के अनेक कार्य किये उसकी कीर्ति आज भी अमर है।

छत्रकुंवरी

छत्रकुंवरी किशनगढ़ (रूपनगर) के महाराजा सरदारसिंह की पुत्री थी। इसका विवाह राघोगढ़ के महाराजा बहादुरसिंह खीची के साथ हुआ। काव्यगुण सम्पन्ना छत्रकुंवरी ने अपना परिचय स्वयं अपने काव्य में दिया है जिसमें अपने को नागरीदास की पौत्री और सरदारसिंह की पुत्री बताया है—

रूपनगर नृप राजसी, जिन सुत नागरिदास
तिन पुत्र जु सरदारसी, हों तनया मैं तास।
छत्र कुंवरी मम नाम है, कहिबे को जग मांहि
प्रिया सरन दासत्व ते, हों हित चूर सदांहि।

राजपूत नारियां केवल शौर्य प्रदर्शन और स्वाभिमान की रक्षा में ही नहीं लगी रही। शील और पतिव्रत धर्म का पालन करना ही मात्र उनका कार्य नहीं रहा। पर्दे के भीतर मोम की गुड़िया बनकर ही नहीं बैठी रही। समय और युग की मांग के अनुसार उन्होंने सदा अपने आदर्शों का तो पालन किया ही, साथ ही कई प्रतिभा सम्पन्न नारियों ने विविध क्षेत्रों में भी प्रशंसनीय उपलब्धियां हासिल की। भक्ति जगत् और काव्य रचना में भी उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रही है जिनकी भक्ति रस में सराबोर हुयी काव्य रचनाएँ सहृदय पाठकों को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। ऐसी ही सरस भावधारा का सृजन करने वाली छत्रकुंवरी थी। उसका लिखा हुआ 'प्रेम विनोद' नामक ग्रंथ मिलता है। इसकी कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं--

श्याम सखी हंसि कुंवरि दिस, बोली मधुरे बैन।
सुमन लेन चलिए अबै, यह बिरिया सुख दैन।
यह बिरिया सुख दैन जान मुसकाय चली अब।
नवल सखी करि कुंवरि, संग सहचरि बिथुरी सब।
प्रेम भरी सब सुमन चुनत जित तित सांझी हित।
ये दुहुं बेबस अंग फिरत निज गति मति मिश्रित॥

कोडमदे

कोडमदे मोहिल राजपूत माणकराय की पुत्री थी। इसकी सगाई मंडोर के शासक राव चूंडा के चतुर्थ पुत्र राजकुमार अरडकमल्ल के साथ की गयी। कोडमदे को यह सम्बन्ध स्वीकार्य नहीं था। कोडमदे तो पूंगल के राजा राणगदेव के पुत्र राजकुमार शार्दूल की वीरता पर मुग्ध थी और उसे ही मन से अपना पति वर चुकी थी। संयोगवश शिकार खेलता हुआ राजकुमार शार्दूल माणकराय के यहां पहुंचा। कोडमदे ने शार्दूल की अब तक केवल वीरता का बखान सुना था। उस वीर को प्रत्यक्ष देखकर उसका निश्चय और भी दृढ़ हो गया। उसने शार्दूल के साथ विवाह करना तय किया।

कोडमदे के माता-पिता, सगे-सम्बन्धी व साथ की सहेलियों ने उसे समझाया कि "तुम्हारी सगाई का नारियल मण्डोर भेजा जा चुका है। तुम उच्चकुल की बहू बनोगी। यह हठ ठीक नहीं।" कोडमदे पर इस सीख का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, उसने अपना मंतव्य स्पष्ट करते हुए कहा—"उच्चकुल राठौड़ वंश की वधू होने की अपेक्षा स्वेच्छा से जिसका मैंने पतिरूप में वरण किया है उसके चरणों की सेविका बनना ज्यादा अच्छा समझती हूँ। मन और प्राणों में बसे पति की प्राप्ति में ही मुझे आनन्द और गर्व का अनुभव होगा। उसके बिना किसी अन्य के साथ मेरा विवाह इस जन्म में तो सम्भव नहीं।" शार्दूल के अलावा अन्य किसी से विवाह न करने का उसने प्रण कर लिया।

तत्कालीन राजपूत समाज में यह परम्परा प्रचलित थी कि कन्या की सगाई जहां एक बार कर दी जाती थी वही शादी करना आवश्यक था। ऐसा न होने पर या सगाई तोड़ने पर वर पक्ष वाले इसे बहुत बड़ा अपमान समझकर मरने मारने पर उतारू हो जाते और खून खच्चर होता। अतः कोडमदे के संकल्प से उसके पिता माणकराय घबराये पर कोडमदे अपने निश्चय पर अटल थी। आखिर कोडमदे की इच्छानुसार पूंगल के राजकुमार शार्दूल को

नारियल भेजा गया और उसके साथ राठौड़ों को विना खबर हुये शीघ्र चुपचाप विवाह करने की योजना बनायी ।

शार्दूल का विवाह कोडमदे के साथ सम्पन्न हुआ पर यह बात मंडोर के राठौड़ अरडकमल्ल से छिपी न रह सकी । अभी शार्दूल विवाह करके लौटा भी न था कि इसकी सूचना उन्हें मिल गयी अतः शार्दूल के लोटने के मार्ग में अरडकमल्ल राठौड़ी सेना के साथ अपने अपमान का बदला लेने आ धमका । जिस बात की मोहिल माणक-राव को आशंका थी वही हुआ । अरडकमल्ल अपने सैनिकों के साथ शार्दूल का रास्ता रोके बैठा था । बारात ज्योंही लौटकर वहां आयी उसे रोक लिया गया । राठौड़ वीर अरडकमल्ल के पास शार्दूल से ज्यादा सैन्य बल था और शार्दूल के साथ केवल बारात में आये लोग ही थे । अतः युद्ध की बजाय उसने द्वन्द युद्ध का प्रस्ताव रखा ।

अरडकमल्ल और शार्दूल दोनों के बीच द्वन्द युद्ध हुआ । अरडकमल्ल के हाथों शार्दूल मारा गया और स्वयं अरडकमल्ल भी गम्भीर रूप से घायल हुआ । कोडमदे, जिसके हथलेवे की मेंहदी का रंग भी हल्का नही पड़ा था, जिसके जीवन के मधुरिम स्वप्नों की शुरुआत भी नही हुई थी, जो विवाह करके अपने ससुराल भी नहीं पहुंची थी कि उसकी आंखों के सामने बीच रास्ते उसका पति द्वन्द युद्ध में मारा गया । अब उसके जीवन में और क्या शेष बचा था । उसने अपनी एक भुजा स्वयं अपने हाथ से काटकर अपने श्वसुर के पास पूंगल के भाट के साथ तथा दूसरी भुजा भी एक सैनिक से कटवाकर अपने पिता के पास इस घटना की साक्षी और प्रतिशोध लेने के लिए भिजवायी और स्वयं वहीं अपने पति के साथ सती हो गयी । जीवन के सुखों का ही नहीं, स्वयं अपना अन्त करके भी कोडमदे प्रण पर अटल रही ।

गोपा (यशोधरा)

गोपा कालि नामक राज्य के महाराजा दण्डपाणि की पुत्री थी। राजकुमारी गोपा जो यशोधरा के नाम से विख्यात हुई। उसका विवाह कपिलवस्तु के होनहार राजकुमार सिद्धार्थ के साथ हुआ। सिद्धार्थ शुरू से ही सांसारिक बंधनों से मुक्त होने का विचार रखता था। वह राजकुमारी गोपा जैसी सुशील पत्नी पाने पर ही दस वर्ष तक गृहस्थाश्रम में बिता सका। उसके राहुल नामक एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ। इतना होने के बावजूद भी सिद्धार्थ का मन सांसारिक नश्वरता को देख उससे मुक्ति पाने को सदा बेचैन रहता था। एक दिन रात्रि में अपनी पत्नी गोपा और पुत्र राहुल को छोड़कर वह तपस्या के लिए वन में निकल पड़ा। यही सिद्धार्थ आगे चलकर गौतमबुद्ध के नाम से विख्यात हुआ और बुद्ध धर्म का संस्थापक बना।

गोपा जो सिद्धार्थ की पत्नी थी उसे अपने पति द्वारा इस प्रकार परित्याग करना अच्छा नहीं लगा। उसके मन में यह टीस बरसों तक रही कि "पति आत्मकल्याण के लिए गये है, वह मेरे लिए गर्व की बात है किन्तु मुझे बिना बताये ही चले गये, यह मेरे लिए सबसे बड़े दुख का कारण है। पति ने मुझे अपने मार्ग की बाधा समझ परित्याग किया, वो मुझे कितना गलत समझ बैठे! मुझे बताकर चले जाते तो मैं अपने हाथों उन्हें आत्मकल्याण के लिए विदा कर धन्य समझती। स्वामी ने मुझे इतना भीरु और कायर समझा।" गोपा जैसी स्वाभिमानी नारी को यह दुख सालता रहा। उसने पतिवियोग में तपस्विनी-सा जीवन बिताकर पुत्र राहुल को पाला-पोसा।

राजकुमार सिद्धार्थ बुद्धत्व प्राप्त कर जब कपिलवस्तु लौटे तो सारा नगर उनके स्वागत के लिए उमड़ पड़ा। गोपा को बरसों बाद अपने पति के दर्शन का अवसर प्राप्त हुआ था, गौतम बुद्ध के दर्शन कर कृतार्थ हुयी और अपने जीवन के प्राणाधार पुत्र राहुल को उनके चरणों में समर्पित कर दिया। वैराग्य मार्ग का अनुकरण करने वाले गौतमबुद्ध भी गोपा के कठोर संयमित जीवन और उसके अद्भुत त्याग से अभिभूत हुये बिना न रह सके। सिद्धार्थ के बुद्धत्व प्राप्ति में गोपा के त्याग की भी महती भूमिका रही, इसीलिए उस यशोधरा का यश आज भी फैला हुआ है।

मृगनयनी

मृगनयनी गुजरात प्रदेश के किसी राज्य की राजकुमारी थी। इसका मृगनयनी नाम 'यथा नाम तथा गुण' को सार्थक करने वाला था अर्थात् मृगनयनी अत्यन्त रूपवती थी। इस राजकुमारी का विवाह ग्वालियर के तोमर वंशीय राजा मानसिंह के साथ सम्पन्न हुआ। ग्वालियर नरेश मानसिंह की यह रानी अन्य रानियों से रूप और लावण्य में तो श्रेष्ठ थी ही पर इससे भी अधिक उसकी प्रसिद्धि उस की गान विद्या के कारण थी। कोकिलकंठा मृगनयनी को गान विद्या बचपन से ही अत्यन्त प्रिय थी और धीरे-धीरे उसमें अभ्यास करने के कारण गान विद्या में उसने श्रेष्ठता हासिल कर ली थी।

मृगनयनी जिसका बचपन एक राजकुमारी के रूप में, राजकीय वैभव में बीता और विवाहोपरान्त ग्वालियर की रानी के रूप में उसने अपना जीवन बिताया, फिर भी गान विद्या में उसकी रुचि बनी रही। विभिन्न राग रागनियों में उसका गायन और वादन दिन प्रतिदिन निखरता गया। रानी मृगनयनी ने अपने समय में गायन और वादन में निपुणता हासिल कर ख्याति प्राप्त करली थी। संकीर्ण राग को रानी मृगनयनी बहुत ही अद्‌भुत ढंग से गाया करती थी। ऐसा भी माना जाता है कि मृगनयनी के संगीत की इतनी ख्याति सुनकर संगीत सम्राट् तानसेन भी उससे मिलने ग्वालियर गया। रानी मृगनयनी ने नवीन रागो का निर्माण कर संगीत परम्परा को पुष्ट किया। उसके द्वारा निर्मित रागो मे गुर्जरी, अहीर गुर्जरी, माल गुर्जरी और मगल गुर्जरी नामक ये चार राग दक्षिण भारत में प्रसिद्ध है। गुर्जर देश (गुजरात) की वह रहने वाली थी अत: मृगनयनी ने अपने देश के नाम पर ही अपने द्वारा खोजी गयी नवीन रागों का नामकरण किया। इस प्रकार मृगनयनी की संगीत के क्षेत्र में एक महत्वपूर्ण भूमिका और सहयोग रहा है जिसे संगीत प्रेमी कभी भुला नहीं सकते।

किरणदेवी

किरणदेवी मेवाड़ के महाराणा प्रतापसिंह के अनुज शक्तिसिंह की पुत्री थी। इसका विवाह बीकानेर के महाराज पृथ्वीराज राठौड़ के साथ सम्पन्न हुआ। पृथ्वीराज राठौड़ प्रसिद्ध वीर, ख्यातिप्राप्त कवि और मुगल सम्राट् अकबर के मनसबदार थे। दोनों पति-पत्नी राजपूती संस्कृति व उसकी परम्पराओं के पोषक थे।

अकबर प्रतिवर्ष 'नौरोज' नामक एक मेले का आयोजन करता। उस मेले में मीना बाजार लगाया जाता तथा केवल स्त्रियां ही उसमें जा सकती थीं। अकबर इस मेले में आयी जिस रूपवती के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता उसे भुलावे से अपने राजमहल में बुलवाकर उसका शील भंग करता। एक बार किरणदेवी को नौरोज के मेले से इसी प्रकार धोखे से राजमहल में ले जाया गया। अकबर उस वीरांगना का अंग स्पर्श करने ज्योंही आगे बढ़ा त्योंही सीसोदिया कुल की वह सिंहनी कटार लेकर उसके छाती पर चढ़ गयी—

सिंहनी सी झपट, दपट चढ़ी छाती पर
मानो शठ दानव पै दुर्गा तेजधारी है।
गर्ज कर बोली दुष्ट ! मीना के बाजार मिस,
छीना अबलाओं का सतीत्व दुराचारी है।
अकबर ! आज राजपूतानी के पाला पड़ा,
पाजी चालबाजी सब भूलती तिहारी है।
कर ले खुदा को याद भेजती यमालय को,
देख ! यह प्यासी तेरे खून की कटारी है।

मुगल सम्राट् अकबर उस वीर नारी के तेज और शौर्य के सम्मुख थर-थर कांपने लगा। गिड़गिड़ाकर उसने किरणदेवी से अपने प्राणों की भीख मांगी। दयामयी किरणदेवी ने आगे से कभी नौरोज का मेला न लगाने तथा नारी की आबरू पर आंख न उठाने की शपथ लेने पर अकबर को माफ कर दिया। उस वीरांगना को 'मां' कहकर पुकारा तब कहीं जाकर अकबर अपने प्राण बचा पाया। इस प्रकार उस वीर राजपूत नारी ने न केवल अपने शील की रक्षा की बल्कि अकबर जैसे सम्राट् को नौरोज मेले का आयोजन बन्द करने पर भी विवश किया।

सीता सोलंकनी

सीता देवी गागरोनगढ़ के राजा पीपा की रानी थी। सीता सोलंकनी पतिव्रता नारी थी। गागरोनगढ़ के नरेश पीपा ने अपने समस्त राज्य एवं सम्पत्ति का परित्याग करके संत रामानंद का शिष्यत्व स्वीकार कर सन्यास धारण किया। उस समय पीपा की बारह रानियों में से केवल पतिपरायणा सीता सोलंकनी ही ऐसी थी जिसने अपने पति के वैराग्यव्रत में पूर्ण सहयोग दिया। वह राजकीय वैभव का परित्याग कर पति सेवा में आजीवन लगी रही। पीपा के सन्यासी बनने पर स्वयं सीता देवी ने भी सन्यास धारण किया और सदैव अपने पति के सुख-दुख में साथ रहकर उसकी तपस्या में सहायक बनी।

सीता देवी पतिपरायण, आतिथ्य सेवी, ईश्वरभक्त के साथ साथ परदुखकातर भी थी। दूसरों के दुख देखकर उसका कलेजा पसीज जाता। एक बहुत निर्धन गृहस्थी जिसके पास एक समय का भोजन भी न था उसके घर कुछ साधु भोजन करने के निमित्त पहुंच गये। संत पीपा और उसकी पत्नी भी उसमें शामिल थे। गृहस्थ ने अपने द्वार आये साधु अतिथियों को भोजन करवाया पर सीता देवी ने देखा कि भोजन करवाने के बाद उसकी गृहणी साधुओं को नमन करने नहीं आयी तो वह स्वयं घर के भीतर गयी। तब उसे ज्ञात हुआ कि उसके पास तन ढंकने को कपड़ा तक नहीं है, एक साड़ी थी जिसे बेचकर आज साधुओं को भोजन करवाया गया। उसके अतिथि सत्कार को देख सीता देवी अभिभूत हो गयी। अपने पति को सारा वृत्तान्त सुना, स्वयं गांव में घर घर घूमकर भजन कीर्तन करके द्रव्य एकत्र किया और उस गृहस्थिनी को लाकर दिया। ऐसी परदुखकातरता थी सीता देवी की। अपने पति पीपा के साथ द्वारका में समुद्र में कूद कर उस भक्तिमति ने भगवान् द्वारकाधीश के दर्शन किये और छाप, अंगूठी और वरदान प्राप्त किया। द्वारिका धाम में इस घटना के बाद ही द्वारिका की छाप की प्रथा प्रारम्भ हुई, ऐसा माना जाता है। सीता देवी की भक्ति-भावना व विभिन्न चमत्कारों का उल्लेख नाभाकृत भक्तमाल में भी किया गया है।

रानी प्रभावती

भोपाल के पास स्थित गुन्नौर राज्य की रानी प्रभावती के रूप और लावण्य पर मुग्ध होकर समीप के मुसलमान सूबेदार ने गुन्नौर पर आक्रमण कर दिया। रानी ने अपने सैनिकों के साथ उसका मुकाबला किया। गुन्नौर पर यवनों का अधिकार हो गया। रानी ने अपने बचे हुये थोड़े से सैनिकों के साथ नर्मदा के समीप स्थित किले में शरण ली। यवनों ने उसका पीछा करते हुए उस किले को घेर दिया। गुन्नौर की रानी प्रभावती के पास थोड़े से सैनिक थे उसमें से भी अधिकांश वीरगति प्राप्त कर चुके थे, फिर भी रानी प्रभावती हिम्मत और साहस से स्थिति का सामना कर रही थी।

सूबेदार ने रानी प्रभावती को आत्मसमर्पण करने हेतु पत्र लिखा उसमें उसने यह भी लिखा कि "मैं तुमसे विवाह करना चाहता हूं। मुझसे विवाह कर तुम सुख के साथ जीवन व्यतीत करो।" रानी प्रभावती ने परिस्थिति को देखते हुए कूटनीति से काम लेना उचित समझा। विवाह का प्रस्ताव स्वीकृत कर उसने विवाह की रस्म हेतु एक दिन का समय मांगा। समय मिल गया। रानी ने सूबेदार हेतु दूल्हे की पोशाक तैयार करवायी और विवाह करने वह आया तब उसे यही पोशाक पहन कर शादी करने का प्रस्ताव रखा। विवाह की उमंग में वह यह भूल गया कि इस पोशाक से भी रानी बदला ले सकती है। विष-बुझी उस पोशाक को पहन वह रानी प्रभावती से विवाह करने महल के भीतर पहुंचा, उसके पहले उसके शरीर में जलन होने लगी। पंखा झलने, इत्र व गुलाब जल छिड़कने से भी उसे कब आराम मिलना था। विष-बुझी पोशाक से सूबेदार का सारा शरीर नीला पड़ गया और वह मूर्च्छित हो गया। रानी प्रभावती ने उसके अनुचरों को सारी बात बता दी और कहा अब सारे प्रयास व्यर्थ हैं। उस कामांध की यही सजा हो सकती थी। सूबेदार के सैनिक रानी को गिरफ्तार करने दौड़े, उससे पहले उस वीरांगना ने नर्मदा में छलांग लगा अपनी इहलीला समाप्त कर दी। उसकी समाधि के दर्शन करने से कहते हैं कि आज भी शीत ज्वर दूर हो जाता है।

भीमाबाई

यशवंत राव होल्कर की पुत्री भीमाबाई बड़ी वीर और साहसी महिला थी। बचपन में ही उसने घुड़सवारी और अस्त्र चालन में दक्षता हासिल कर ली थी। अहल्याबाई के दत्तक पुत्र तुकोजीराव का बेटा यशवंतराव तुलसीबाई नामक एक रूपवती के रूपजाल में फंसकर प्रमादी बन गया था। तुलसीबाई ने पूरे राजभवन पर अधिकार जमा रखा था और यशवंतराव की मृत्यु के पश्चात् तो उसकी उस प्रेयसी ने सम्पूर्ण राज्य पर अधिकार कर लिया।

भीमाबाई अपने ससुराल में थी। उसके पति का देहान्त हो चुका था। विधवा भीमाबाई को अपने पिता के राज्य की अराजकता व अवनति का पता लगा तो बड़ा दुःख हुआ। पितृकुल के गौरव और सम्मान की रक्षा के लिए उस वीरांगना ने होल्कर राज्य की मुक्ति का प्रयास किया। तुलसीबाई भी कम चतुर न थी उसने अंग्रेजों की मदद प्राप्त कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी। भीमाबाई ने उस पर आक्रमण किया पर विजय प्राप्त नहीं कर सकी तो पहाड़ों में छिपकर अंग्रेजी खजाने, चौकियां व सामग्री लूटने लगी। उसके छापामार आक्रमणों से अंग्रेज परेशान थे। सर माल्कम नामक अंग्रेज भीमाबाई की तलाश में था। खोज करते-करते संयोगवश उसे एक दिन भीमाबाई जंगल में दिखाई दी। उस समय भीमाबाई के पास एक घुड़सवार सैनिक ही था। माल्कम ने भीमाबाई को जीवित पकड़ने का यह उचित अवसर समझा। अंग्रेज घेरा डाले इससे पूर्व भीमाबाई ने अपने अंगरक्षक सैनिक को भागने का आदेश दे दिया। वह अकेली रह गयी फिर भी घबरायी नहीं। अंग्रेजों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। घेरा जब बिल्कुल छोटा हो गया तो उसने अपना घोड़ा सर माल्कम की तरफ धीरे-धीरे बढ़ाया। सभी ने सोचा वह आत्मसमर्पण करने जा रही है पर माल्कम के सम्मुख पहुंचते ही उसने अपने घोड़े को एड़ लगायी, घोड़ा माल्कम के ऊपर से छलांग लगा एक ही क्षण में घेरे के बाहर हो गया। अंग्रेज सैनिकों ने उसे पकड़ने की कोशिश की पर सफल न हो सके। अंग्रेजों ने बाद में भी उसे पकड़ने की बहुत कोशिश की परन्तु भीमाबाई को अंग्रेज भी गिरफ्तार न कर सके।

रानी रत्नावती

रत्नावती आमेर नरेश सवाई मानसिंह के छोटे भाई माधोसिंह की पत्नी थी। राजपरिवार में ऐश्वर्य युक्त जीवन बिताने के अलावा और किसी ओर ध्यान नहीं जाता है परन्तु रानी रत्नावती राजमहल में स्थित एक दासी की भक्ति से बहुत प्रभावित हुयी और उसका मन धीरे-धीरे भगवद् भक्ति की ओर प्रेरित हुआ। मन मे जब भगवान् की भक्ति का संकल्प ले लिया तो फिर वह उससे पीछे नही हटी। उसे संसार की असारता का बोध हुआ और केवल ईश्वर भक्ति में समय बिताना ही सार्थक समझा।

रत्नावती की भक्ति से राजमहल की अन्य रानियाँ द्वेष रखती थीं तथा रानी होकर भजन-कीर्तन के कार्यों में लगे रहना रत्नावती के लिए ठीक नही बताया। रत्नावती ने कहा–"ईश्वर भक्ति में मेरा रानी होना रोड़ा बनता है। मैं कैसी रानी हूँ। मेरे शरीर के किस भाग का नाम रानी है। मेरा तो स्वरूप नित्य रहने वाला ही नहीं है।" यह आरोपित रानीपन उसके सत्संग में जब बाधक बनने लगा तो वह रानी पद की मानव निर्मित खोखली मर्यादाओ का परित्याग कर सत्संग का लाभ उठाने लगी।

रत्नावती के पति उन दिनों दिल्ली में थे। रनिवास में रत्नावती की चर्चा होने लगी। मन्त्रियों ने माधोसिंह को सूचित किया कि रानी रत्नावती लाज-मर्यादा छोड़ साधुओं के सत्संग में भाग ले रही है, इससे पूरे राजपरिवार की अपकीर्ति हो रही है। माधोसिंह आमेर पहुंचे तो उन्हें चार बात बढ़ाकर बतायी गयी। माधोसिंह बहुत क्रुद्ध हुये और ऐसी कुलकलंकिनी पत्नी से छुटकारा पाने हेतु षड़यन्त्रकारियों की सलाह के अनुसार रानी के महल में पिंजरे से सिंह छोड़ने की एक योजना बनायी। योजनानुसार रानी को मारने हेतु उसके महल में सिंह छोड़ा गया। रानी उस समय पूजा कर रही थी, उसी पूजा की थाली से सिंह की उसने भगवान् नृसिंह का रूप मान पूजा की। शेर ने महल से बाहर निकलकर जो लोग उसे पिंजरे में पकड़कर लाये थे उन्हें मार डाला। इस घटना से माधोसिंह व राजपरिवार के सभी लोग रानी रत्नावती की भक्ति से बहुत प्रभावित हुये।

राजमाता दमयन्ती

आमेर के राजा मानसिंह के पश्चात् भावसिंह गद्दी पर बैठे। भावसिंह के कोई पुत्र न था अतः उसके पश्चात् परम्परा के अनुसार राज्य का उत्तराधिकारी महासिंह का पुत्र ही बनने वाला था। महासिंह की पत्नी अपने इस अल्प वयस्क पुत्र जयसिंह को लेकर दौसा चली गयी क्योंकि आमेर के भावी उत्तराधिकारी के सम्मुख राज्य लोलुप लोगों के भारी खतरे थे। षड्यन्त्रकारी राज्य प्राप्ति के लिए उचित अनुचित का ख्याल किये बिना अपनी इच्छा की पूर्ति हेतु प्रयत्नशील होते हैं। दमयन्ती ने इस भावी संकट को पहले ही समझ लिया और आमेर से प्रस्थान कर दौसा चली गयी। दौसा में जयसिंह को कोई खतरा नहीं था और वहीं पर अपने पुत्र का दमयन्ती ने लालन-पालन किया।

जयसिंह की शिक्षा-दीक्षा की समुचित व्यवस्था की गयी। उसे विभिन्न विषयों का अध्ययन करवाया गया। राजकुमार जयसिंह विभिन्न विषयों, भाषाओं और विद्याओं में पारंगत हो गया। सैन्य शक्ति में उसने निपुणता हासिल कर ली थी तथा राजनीति की शिक्षा भी उसे भली प्रकार प्रदान की गयी। इसके साथ ही माता दमयन्ती ने अपने पुत्र को धार्मिक शिक्षा का ज्ञान करवाया और उसमें अच्छे संस्कारों का निर्माण किया।

भावसिंह की मृत्यु के पश्चात् आमेर का शासक जयसिंह बना। अपनी मां के कुशल नेतृत्व में संस्कारित और शिक्षित हुये जयसिंह ने बहुत ही कुशलता से अपने राज्य का प्रबन्ध और संचालन किया। मानसिंह के बाद जयसिंह ही आमेर का ऐसा शासक था जिसने लम्बे समय (46 वर्ष) तक शासन किया और उसके काल में राज्य का चहुंमुखी विकास हुआ। जयसिंह ने मुगल साम्राज्य की भी महती सेवा की, इसके उपलक्ष्य में उसे "मिर्जाराजा" की उपाधि प्राप्त हुई। राजमाता दमयन्ती ने अपने पुत्र जयसिंह को योग्य और प्रजाप्रेमी शासक बनाकर राजपूत नारी का अपना कर्तव्य भली भांति निभाया।

रणछोड़कुंवरी व व्रजभानकिशोरी

रणछोड़कुंवरी रीवां के महाराजा विश्वनाथसिंह के भाई बलभद्रसिंह की पुत्री थी। इसका विवाह जोधपुर के महाराजा तखतसिंह के साथ हुआ। रणछोड़कुंवरी रानी बाघेलीजी के नाम से मारवाड़ में प्रसिद्ध है। धार्मिक भक्ति भावना से ओतप्रोत रानी रणछोड़कुंवरी ने यहां सार्वजनिक उपयोग के कई कार्य किये। इसके द्वारा बनवाया गया राज रणछोड़जी का मन्दिर बहुत ही भव्य और सुन्दर है। काव्य रचना में निपुण इस रानी ने कृष्ण भक्ति के कई पद लिखे। एक पद यहां दिया जा रहा है—

गोविन्दलाल तुम हमारे, मोहे दुख से उबारे।
मैं सरन हूं तिहारे, तुम काल कष्ट टारे।
हो बाघेली के प्यारे, सिर क्रीट मुकुट वारे।
छोनी छटा को पसारे, मोरी सूरत ना बिसारे।
कोटिक पतित उबारे, कृपा दृष्टि से निहारे।
हो भरोसे ही तिहारे, मेरी बात को सुधारे।

व्रजभान किशोरी नामक जोधपुर के महाराजा तखतसिंह की यह रानी कृष्ण की उपासिका थी। कृष्ण में अगाध भक्ति रखने वाली व्रजभान किशोरी काव्यगुण सम्पन्न थी अतः कृष्ण की विभिन्न लीलाओं का वर्णन उसने विविध राग रागनियों में जो किया वह बहुत ही सुन्दर और हृदयग्राही है। कृष्ण गायों को चराकर पुनः नन्द के घर लौट रहे है, उसका वर्णन इस पद में द्रष्टव्य है—

धेन संग आवत स्याम बिहारी
अंग रज छाजत छुवत नैनन में, कज छरी करधारी।
निरखत नन्द ग्वाल सब निरखत, निरखत सबै व्रजनारी।
गुंजमाल उरमाल फूलन की, बंशी वर सुर भारी।
तखतराज नन्दलाल कंवर कूं, निरखत नैन निहारी।

सौभाग्यकुंवरी व सोढ़ी नाथी

सौभाग्यकुंवरी जोधपुर के महाराजा तखतसिंह की पुत्री थी। राजकुमारी सौभाग्यकुंवरी का विवाह बून्दी के राजा रघुवीरसिंह के साथ हुआ। सौभाग्यकुंवरी काव्यरचना में बचपन से ही रुचि रखती थी और भगवद् भक्ति में उसकी पूर्ण आस्था थी। राम के साथ कृष्ण को भी वह अनन्य भाव से सेवा पूजा करती थी। रामस्नेही संप्रदाय के संत भावनदास उसके गुरु थे। गुरु महिमा के पद सौभाग्यकुंवरी ने रचे। इसके साथ ही कृष्ण लीला और निर्गुण भक्ति के पदों की भी रचना की। राजस्थानी भाषा में लिखे हुये इसके पद विविध राग रागनियों में मिलते हैं। सौभाग्यकुंवरी द्वारा रचित एक पद—

प्यारी लागै म्हांनै राज री मरोर
सोभाग्य बिहारी बनड़ो चित चोर।
केसरिया सिर पेच कलंगी, जामो जरकस कोर।
अधर धरी मुरली मनमोहन, ठाढ़ो नन्द किसोर॥
दरस करत सुर नर मुनि मोहे, सुन मुरली की सोर।
गोपी ग्वाल बाल चहुं दिस ते, निरखत नन्द किसोर॥

सोढी नाथी अमरकोट के राणा चन्द्रसेन की पौत्री तथा सोढा राणा भोज की पुत्री थी। इसका विवाह देरावर के राजा सुन्दरदास के साथ हुआ। सुन्दरदास भाटी जैसलमेर के पदच्युत रावळ रामचन्द्र का पुत्र था। सोढी नाथी कृष्ण की अनन्य उपासिका थी। सोढी नाथी भी कई भक्त महिलाओं की भांति काव्य रचना में निपुण थी। कृष्ण भक्ति में रत रहने वाली सोढ़ी नाथी ने अपने आराध्य की भक्ति में बाल चरित, गूढार्थ, भगवतभाव चन्द्रायण, साखी, नामलीला और कंसलीला आदि अनेक ग्रन्थों का प्रणयन किया। इससे ज्ञात होता है कि सोढ़ी नाथी में काव्यत्व शक्ति अनुपम थी जो कृष्ण भक्ति के माध्यम से मुखरित हुयी।

तीन वीर क्षत्राणियां

अकबर ने जब मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह पर आक्रमण किया तो केलवा के 16 वर्षीय ठाकुर पता की वीर जननी कर्मदेवी ने उसे यह आदेश दिया कि बेटे ! तू क्यों महाराणा के आमन्त्रण की राह देख रहा है। तुझे बच्चा समझकर उन्होंने नहीं बुलाया पर अपने देश पर संकट आया हो तो सच्चा राजपूत युद्ध के आमन्त्रण का इन्तजार नहीं करता । इस कुल की यही परम्परा रही है। उठ, तू इसके निर्वाह में देर मत कर।"

रण चढण कंकण बंधण, पुत्र बधाई चाव।
अे तीनू दिन त्याग रा, कहा रंक कहा राव॥
बाळा चाल मत बीसरे, मो थण जहर समांण।
रीत मरतां ढील की, ऊठ थयो घमसांण॥
रणखेती रजपूत री, कबहुं न पीठ धरै।
देस रुखाळै आपणो, दुखिया पीड़ हरै॥

जहां की ऐसी परम्परा रही हो उस धरती के वीरों का क्या कहना। माता कर्मदेवी के वीरोद्गारों को सुनकर पता मेवाड़ की रक्षा के लिए रवाना हुआ। उसकी बहिन कर्मवती और सहधर्मिणी कमलादेवी ने पता को युद्ध के लिए विदा किया। पता के जाने के बाद उसकी माता कर्मदेवी ने सोचा पता अभी बच्चा है उसे युद्ध का इतना अनुभव नहीं अतः स्वयं युद्ध भूमि में जाने को तत्पर हुयी। मां को युद्ध भूमि में जाते देख उसकी पुत्री कर्मवती व पुत्रवधू कमलादेवी भी पीछे कब रहने वाली थी। कर्मवती ने अपनी भाभी को उत्साह के साथ कहा—

घोड़ा चढ़णो सीखिया, भाभी किसड़ै काम।
बंब सुणीजे पारको, लीजै हाथ लगाम॥

"हमने तलवार चलाना, बन्दूक चलाना और घोड़े पर चढ़ना फिर किस दिन के लिए सीखा है। आज आवश्यकता है। हम भी आपके साथ युद्ध भूमि मे शत्रु से सामना करने को उत्सुक हैं। नणद भोजाई (कर्मवती, कमलादेवी) दोनों का युद्ध-उन्माद देख

तीन वीर क्षत्राणियां

अकबर ने जब मेवाड़ के महाराणा उदयसिंह पर आक्रमण किया तो केलवा के 16 वर्षीय ठाकुर पता की वीर जननी कर्मदेवी ने उसे यह आदेश दिया कि बेटे ! तू क्यों महाराणा के आमन्त्रण की राह देख रहा है। तुझे बच्चा समझकर उन्होने नहीं बुलाया पर अपने देश पर संकट आया हो तो सच्चा राजपूत युद्ध के आमन्त्रण का इन्तजार नहीं करता। इस कुल की यही परम्परा रही है। उठ, तू इसके निर्वाह में देर मत कर।"

रण चढण कंकण बंधण, पुत्र बधाई चाव।
अै तीनू दिन त्याग रा, कहा रंक कहा राव।।
बाळा चाल मत बीसरै, मो थण जहर समांण।
रीत मरंतां ढील की, ऊठ थयो घमसांण।।
रणखेती रजपूत री, कबहुं न पीठ धरै।
देस रुखाळै आपणो, दुखिया पीड़ हरै।।

जहां की ऐसी परम्परा रही हो उस धरती के वीरों का क्या कहना। माता कर्मदेवी के वीरोद्‌गारों को सुनकर पता मेवाड़ की रक्षा के लिए रवाना हुआ। उसकी बहिन कर्मवती और सहधर्मिणी कमलादेवी ने पता को युद्ध के लिए विदा किया। पता के जाने के बाद उसकी माता कर्मदेवी ने सोचा पता अभी बच्चा है उसे युद्ध का इतना अनुभव नही अतः स्वयं युद्ध भूमि में जाने को तत्पर हुयी। मां को युद्ध भूमि में जाते देख उसकी पुत्री कर्मवती व पुत्रवधू कमलादेवी भी पीछे कब रहने वाली थी। कर्मवती ने अपनी भाभी को उत्साह के साथ कहा—

घोड़ा चढ़णो सीखिया, भाभी किसड़ै काम।
बंब सुणीजै पारकी, लीजै हाथ लगाम।।

"हमने तलवार चलाना, बन्दूक चलाना और घोड़े पर चढ़ना फिर किस दिन के लिए सीखा है। आज आवश्यकता है। हम भी आपके साथ युद्ध भूमि मे शत्रु से सामना करने को उत्सुक है। नणद भोजाई (कर्मवती, कमलादेवी) दोनो का युद्ध-उन्माद देख

माता कर्मदेवी उन्हें मना नहीं कर सकी और तीनों क्षत्राणियों ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया।

बदनोर के ठाकुर जयमल के नेतृत्व में मेवाड़ी सेना ने भयंकर युद्ध किया। इधर पत्ता ने भी उस युद्ध में अपने अद्भुत शौर्य और रणकौशल का प्रदर्शन किया। वह मेवाड़ के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान रखता है। इतिहास आज भी जयमल और पत्ता दोनों की वीरता की याद दिलाता है। रणभूमि में पत्ता शत्रु दल पर कहर ढा रहा था। इधर अकबर ने मेवाड़ी सेना पर पीछे से आक्रमण करने की योजना बनायी। अपनी योजना के अनुसार अकबर युद्धभूमि के पृष्ठ भाग से आक्रमण करने पहाड़ी मोर्चे की तंग घाटी से प्रवेश कर रहा था, उस समय उन तीनों राजपूत वीरांगनाओं ने मोर्चा लेकर शत्रु दल पर प्रहार किया। एक एक गोली एक एक सैनिक के प्राणों की ग्राहक हो रही थी। अकबर इस अनचाहे प्रतिरोध से स्तम्भित रह गया क्योंकि उसकी यह योजना गुप्त थी और किसी को इसका पता तक नहीं था। कर्मदेवी को यह आशंका पहले से थी कि शत्रु दल उस रास्ते से पीछे से हमला कर सकता है अतः उन तीनों वीरागनाओं ने उस मोर्चे पर डटकर मुकाबला किया। अकबर को अपने अनुचरों से यह ज्ञात हुआ कि उस मोर्चे पर केवल तीन स्त्रियां ही हैं, तब कहीं जान में जान आयी। अकबर ने भी उनकी वीरता की मन ही मन प्रशंसा की। जब तक वे तीनों जीवित रहीं उस मोर्चे से शत्रु को प्रवेश नहीं होने दिया। उन तीनों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान किया। जन्मभूमि की स्वतन्त्रता हेतु सर्वस्व त्याग कर दिया। ऐसी ही वीर माताओं, बहिनों और राजपूत कुल-ललनाओं के कारण देश का इतिहास गौरवशाली बन पाया। जिनका पूरा कुल ही रण में शयन करने वाला हो ऐसे वीरों का देश कभी पराधीन नहीं हो सकता। उनका तो इतिहास अनूठा होना ही है।

माता कर्मदेवी उन्हें मना नहीं कर सकी और तीनों क्षत्राणियों ने युद्ध के लिए प्रस्थान किया।

बदनोर के ठाकुर जयमल के नेतृत्व में मेवाड़ी सेना ने भयंकर युद्ध किया। इधर पता ने भी उस युद्ध में अपने अद्भुत शौर्य और रणकौशल का प्रदर्शन किया। वह मेवाड़ के इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान रखता है। इतिहास आज भी जयमल और पता दोनों की वीरता की याद दिलाता है। रणभूमि में पता शत्रु दल पर कहर ढा रहा था। इधर अकबर ने मेवाड़ी सेना पर पीछे से आक्रमण करने की योजना बनायी। अपनी योजना के अनुसार अकबर युद्धभूमि के पृष्ठ भाग से आक्रमण करने पहाड़ी मोर्चे की तंग घाटी से प्रवेश कर रहा था, उस समय उन तीनों राजपूत वीरांगनाओं ने मोर्चा लेकर शत्रु दल पर प्रहार किया। एक एक गोली एक एक सैनिक के प्राणों की ग्राहक हो रही थी। अकबर इस अनचाहे प्रतिरोध से स्तम्भित रह गया क्योंकि उसकी यह योजना गुप्त थी और किसी को इसका पता तक नहीं था। कर्मदेवी को यह आशंका पहले से थी कि शत्रु दल उस रास्ते से पीछे से हमला कर सकता है अतः उन तीनों वीरांगनाओं ने उस मोर्चे पर डटकर मुकाबला किया। अकबर को अपने अनुचरों से यह ज्ञात हुआ कि उस मोर्चे पर केवल तीन स्त्रियां ही हैं, तब कहीं जान में जान आयी। अकबर ने भी उनकी वीरता की मन ही मन प्रशंसा की। जब तक वे तीनों जीवित रहीं उस मोर्चे से शत्रु को प्रवेश नहीं होने दिया। उन तीनों ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अपने प्राणों का बलिदान किया। जन्मभूमि की स्वतन्त्रता हेतु सर्वस्व त्याग कर दिया। ऐसी ही वीर माताओं, बहिनों और राजपूत कुल-ललनाओं के कारण देश का इतिहास गौरवशाली बन पाया। जिनका पूरा कुल ही रण में शयन करने वाला हो ऐसे वीरों का देश कभी पराधीन नहीं हो सकता। उनका तो इतिहास अनूठा होना ही है।



विक्रमसिंह राठौड़

शिक्षा—एम. ए., बी. एड, पीएच. डी.

मरुभारती, परम्परा, माणक, मधुमती, जागतीजोत क्षत्रियदर्शन इत्यादि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में शोध परक व साहित्यिक रचनाएँ प्रकाशित ।

प्रकाशित पुस्तकें

1 सरप्रताप और उनकी देन
2 राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी के हस्तलिखित ग्रंथों की सूची भाग-5
3 राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी के हस्तलिखित ग्रंथो की सूची भाग-6
4 स्वतंत्रतापूर्व राजस्थान
5 गीता री सौरभ (राजस्थानी कविता)
6 भारतरत्न (प्रेस में)

सम्प्रति—शोध सहायक,
राजस्थानी शोध संस्थान
चौपासनी, जोधपुर (राज.)